ऊपरके थोड़ेसे शब्दोंमें मैंने दुर्भिक्षकी भीषणता दिखलानेका प्रयत्न किया है। अब प्रश्न ठता है कि राज्य की ओर से दुर्भिक्षमें जनपदोंकी रक्षाके लिए क्या प्रबंध होता था? ल्य के अर्थशास्त्र में एक जगह सूत्र रूप से राजाको दुर्भिक्षमें अपनी प्रजाको बचानेका है। (अर्थशास्त्र, गणपतिशास्त्री द्वारा संपादित, २, पृ. १३१)। सूत्रका अनुवाद इस है :

"दुर्भिक्षमें राजा बीज और खानेकी वस्तुओंको जबरदस्ती लेकर अपनी प्रजा पर अनुग्रह करके बाँटे। खाना देकर दुर्ग और पुल बनवाये, रेशनिंग (भक्त संविभाग) का प्रबंध करके लोगोंकी रक्षा करे। अथवा प्रजाको थोड़े दिनोंके लिये दूसरे राज्यके संरक्षणमें जानेकी आज्ञा दे, अथवा किसी मित्र राष्ट्र की मदद ले, अथवा धन वालोंसे जबरदस्ती खाद्य वस्तुएँ इकट्ठी करे (कर्शन, वमन का यह अर्थ स्वाभाविक है)। अथवा राजा अपनी प्रजाके साथ उन प्रदेशोंमें जाये जहाँ फसल अच्छी हुई हो अथवा वह अपनी प्रजाके साथ समुद्र, नदीके किनारे या झील पर चला जावे। अपनी प्रजाको अन्न, शाक-भाजियाँ, कंद, मूल और फल, जहाँ पानी मिलता हो वहाँ, पैदा करनेके लिये बाध्य करे। बहुत बड़े पैमाने पर मछलियों और वन्य पशुओं, जैसे हाथी इत्यादि, का शिकार करके अपनी प्रजाका भरण करे।"

कौटिल्यके सूत्रकी जाँच करनेसे हम प्राचीन भारतमें दुर्भिक्ष निवारणके निम्नलिखित रूप हैं।

(१) धन गृहपतियोंसे जिनके पास काफी अन्न था उनकी रज़ामंदी या ज़बरदस्ती लेकर उसका प्रजामें समान भावसे वितरण होता था। चोरीसे इकट्ठा करने वाले गाहकोंसे तब तक इतनी कड़ाई की जाती थी जब तक उनके पाससे सब वस्तुएँ तमद न हो जायँ।

(२) दुर्भिक्षसे लोगोंकी रक्षा करनेके लिये रेशनिंग अथवा समभक्त प्रथाका पालन ता था। आगे चलकर हम देखेंगे समभक्त प्रथाकी व्यवस्था कितनी वैज्ञानिक थी।

(३) सर्व साधारणके हितार्थ पुल, दुर्ग इत्यादि बनवा कर, वेतनकी जगह खाना देकर की रक्षा।

(४) भूखी प्रजाको राज्यत्याग का आदेश। कभी कभी राजा स्वयं अपनी प्रजाके साथ छोड़ देता था।

(५) राज्यमें जहाँ पानी मिलता था वहाँ अन्न इत्यादि पैदा करना तथा शिकार खेलकर खाद्य पदार्थोंकी अभिवृद्धि।

उपरोक्त दुर्भिक्ष निवारणके उपायोंमें समभक्त प्रथा पर हमें विशेष ध्यान देना चाहिये कि इस बातमें रेशनिंगने बहुतों की आँखें खोल दी हैं।

आधुनिक बड़ी बड़ी लड़ाइयोंका सबसे बुरा नतीजा अकाल ही होता है। इस कठिन [illegible] अपना काम छोड़ कर दूसरे कामोंमें लग जाते हैं जिससे [illegible] उसकी कुछ पैदा कम होता है, जो [illegible] पैदा होता है। [illegible] देखने की [illegible] हो सकते हैं और इन देशों [illegible] हैं ठीक समय पर और [illegible] नहीं पहुँच [illegible] पूरा करनेके लिये [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करना पड़ा [illegible]

अधिक थी, इस देशमें खाद्य वस्तुओंकी इतनी अधिक कमी पड़ने लगी कि सरकारके
बड़े शहरोंमें गुप्तमक प्रथा चलानी पड़ी। अब सवाल यह उठता है कि समभक्त
भारतके लिए कोई नई चीज है अथवा ऐसी कोई प्रथा प्राचीन भारतमें भी थी।
हम कह चुके हैं अर्थशास्त्रमें इसका उल्लेख आता है। अभी मैंने लड़ाईके समय
मक्त प्रथाका उल्लेख भारतीय साहित्यमें नहीं पाया है, लेकिन हम इस बातका अनुमान
सकते हैं जब शत्रुओंसे घिरकर भारतकी एक प्राचीन नगरीमें खाद्य पदार्थोंका यातायात बंद
आता था तब हो सकता है कि समभक्त प्रथा जारी की जाती रही हो। दुर्भिक्षमें तो समभक्त
खूब चलती थी। दिव्यावदानकी निम्न लिखित कथासे प्राचीन भारतकी समभक्त प्रथा
काफी प्रकाश पड़ता है:—

प्राचीन भारतमें कनकवर्ण नामका राजा राज्य करता था। उसका खजाना सोने और
जवाहरातोंसे भरा था। उसके पास असंख्य घोड़े, हाथी, गाय और भेड़ें थीं और उसके कोष्ठागार
अन्नसे भरे थे। उसकी राजधानी कनकवती चौदह योजन लंबी और सात योजन चौड़ी थी
नगरमें खानेकी कोई कमी न थी। राजाके जनपद भी काफी सुखी थे। बहुतसे अव्यवहारि
करों और चुंगियों ('अशुल्क' 'अगुल्म') को उसने माफ कर दिया था। इस तरह उस
बहुत दिनों तक सुख-पूर्वक राज्य किया। अभाग्यवश नक्षत्रोंके कोपसे देशमें बारह साल
दुर्भिक्ष पड़नेका योग आया। ब्राह्मणों, लक्षणज्ञों, नैमित्तिकों और ज्योतिषियोंने शुक्रकी गति दे
कर राजासे आकर कहा कि देशमें बारह साल तक पानी नहीं बरसेगा। अपने समृद्ध देश
भावी दुर्दशाकी बात सोच कर कनकवर्णकी आँखोंमें आँसू आगये। राजाने सोचा देशके सामर्थ्यव
पुरुष तो किसी तरह से खा-पीकर बच जायेंगे लेकिन गरीब जनता जिसके पास बहुत
खाना पीना है पूरी तौरसे नष्ट हो जावेगी। निरीह जनताको भुखमरीसे बचानेके लिए रा
भारतवर्षके हर एक कोनेसे अन्न इकट्ठा करनेका और जनगणना करवानेका निश्चय कि
सब बातोंका विचार करके उसने हर एक ग्राम, नगर, निगम, कर्वट और राजधानि
एक एक कोष्ठागार खोलनेका निश्चय किया। अपने विचारको मूर्तरूप देनेके लिए उसने
गणक महामात्र (Accountant General), अमात्यों, दौवारिकों, और पारिषदोंको
बुला कर उन्हें देशके हर एक कोनेसे अन्न इकट्ठा करने की, जनगणना करने की और सब जगह
कोष्ठागार खोलने की आज्ञा दी। ये कारबरदार राजाका हुक्म बजा लाए। बादमें राजाने
संख्यागणकों (census officers), और लिपिक पुरुषों (clerks) को बुलाकर भारतवर्षके
हर कोनेमें जा कर हर एक आदमीकी जाँचपड़ताल करके सबको समान रूपसे खाद्य पदार्थ
विभाजित करनेकी आज्ञा दी। उन लोगोंने राजाज्ञाका पालन किया। इस तरहसे दुर्भिक्षके ग्यारह
साल तो बीत गए; लेकिन बारहवें वर्ष इकट्ठा किया हुआ अन्न समाप्त होगया और लोग भूखों
मरने लगे। देशकी ऐसी अवस्था होगयी कि अन्नका एक दाना मिलना असंभव था। केवल
राजाके पास उसके हिस्सेका एक मन (मानिका) अन्न बच गया था। (दिव्यावदान, २०,
पृ. २९१-९३)

समभक्त प्रथाके इतने वैज्ञानिक निरूपणके बाद कहानी दानकी महत्ताको साबित करने
पर उतर आती है। राजा अमात्योंकी रायके खिलाफ भी बोधिसत्त्वको अपने हिस्सेका अन्न दे
देता है जिसके फलस्वरूप देशमें अन्न, वस्त्र और सुवर्णकी वर्षा होती है और लोग फिर सुखी
हो जाते हैं।

ऊपर की कहानीमें कुछ कल्पित बातें भी हैं जैसे दुर्भिक्षका बारह बरस तक रहना, ज्यो
ज्योतिषियोंकी दुर्भिक्ष संबंधी भविष्यवाणी और देशको पुनः समृद्ध करनेका बोधि
ऐसी बातोंका समावेश होना क्षम्य है। दिव्यावदान कोई

इतिहास नहीं है। उसमें तो उन कहानियोंका संग्रह मात्र है जिन्हें पढ़ सुनकर लोगोंकी बौद्ध धर्म की तरफ श्रद्धा बढ़े। अलौकिक घटनाओंको छोड़कर इस कहानीसे प्राचीन भारतकी सममक्त प्रथापर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इससे पता चलता है कि प्राचीन भारतके राजे-महाराजे और राजकर्मचारी जनताके कल्याणके लिये कितने सतर्क रहते थे।

प्राचीन भारतकी सममक्त प्रथा केवल किताबी बात या गप ही नहीं है। इसका सुबूत हमें मौर्यकालके सोहगौरा और महास्थानके शासन पट्टोंसे मिलता है।

सोहगौरामें मिले हुए ताम्रपट्टमें चार पंक्तियोंका अशोक कालीन ब्राह्मीमें अभिलेख है। जबसे यह अभिलेख मिला तबसे आज तक बहुतसे विद्वानोंने इसे अपने अपने ढंगसे पढ़नेका प्रयत्न किया है। (देखिये, एस. एन. चक्रवर्ती, जे. ए. एस. बी. लेटर्स, ७ (१९४१) (पृ. २०३-५) लेखके निम्नलिखित अर्थ होते हैं:—

" मानवसितिके श्रावस्तीके महामात्रोंकी सिरि महत्तरों (गाँवोंके मुखियों) के नाम आज्ञा : केवल दुर्भिक्षके समय तिल, यव, मन्थु, लावा, अजवाइन और अन्य धान्य जिनके भार द्रम्य कोष्ठागारोंमें रखते हैं, बाँटे जाने चाहिये।"

दुर्भिक्ष-सहायतासे संबंधित मौर्यकाल कालका एक दूसरा अभिलेख महास्थान वाली प्राचीन पुंड्रवर्धनसे मिला है (डी. आर. भांडारकर, एपि. इंडि. २१, पृ. ८३ इत्यादि; बी. एम. बरुआ, इंडि. हिस्टोरिकल क्वा., १०, पृ. ५७ इत्यादि)। दुर्भाग्यसे लेख कुछ टूटफूट गया है और इससे इसके समझनेमें कुछ दिक्कत पड़ती है। डा. भांडारकरके अनुसार (वही, पृ. ८७) मौर्यकालीन किसी राजाने पुंड्रनगरमें स्थित महामात्रके नाम एक आज्ञा जारीकी जिससे दुर्भिक्षसे पीड़ित समवंगीयोंको जो पुड्रनगरके आसपास रहते थे सहायता पहुँच सके। सहायताके लिए दो बातोंका उल्लेख है। पहलीमें तो समवंगीयोंके सहायतार्थ गंडक सिक्कों का देना है और दूसरीमें उन लोगोंमें कोष्ठागारसे धान्य बाँटनेकी बात है। इसके बाद यह आशा प्रकट की गई है कि समवंगीय इस सहायतासे दुर्भिक्षकी कठिनाइयोंको पार कर जायेंगे, और शुभ समृद्धि वापस आने पर वे सिक्के और धान्य राज्यको लौटा देंगे।

इन दोनों अभिलेखोंके मिलान करने पर निम्नलिखित बातोंका पता चलता है :

(१) राजाज्ञा पहले महामात्रोंके नाम जारी की जाती थी; वे महामात्र महत्तरोंको आदेश देते थे। महत्तरोंको आदेश देना आवश्यक था क्योंकि भारतवर्षमें प्रान सरकारी कर्मचारियोंके अधिकारमें सबसे नीचा पद था, और दुर्भिक्ष निवारण संबंधी किसी योजनाके सफल होनेका भेद महत्तरको था। अर्थशास्त्रके अनुसार गाँवके मुखिया (ग्रामिक) को काफी अधिकार होते थे जिनके द्वारा वह लोगोंसे कुछ काम करनेके लिए जबर कर सकता था।

(२) जान पड़ता है राज्यकी ओर से बहुत बड़े कोष्ठागार बने होते थे जिनमें तरह तरहके अन्न दुर्भिक्ष निवारणार्थ इकट्ठा किये जाते थे।

(३) आजकलकी तरह किसानोंको तकावी भी बाँटी जाती थी जो इन्हें अच्छी फसल होने पर लौटा देना पड़ता था।

अब आपने देख लिया होगा कि प्राचीन भारतमें दुर्भिक्ष निवारणके लिये किस किस प्रकारके उपाय किए जाते थे। आज दिन जमाना बहुत आगे बढ़ गया है। पुराने और आधुनिक उपायोंके तुलनामें कोई मुकाबला नहीं। फिर भी दुर्भिक्ष पीड़ित जनताकी हर एक समय जितनी सहायता कर सकते थे, उतनी आज नहीं कर पा रहे हैं। कारण स्पष्ट है।

जम्हाई लेते प्रतीक्षा कर रहे थे। परन्तु पढ़े लिखे पण्डितजीके लिये रेलगाड़ीका आना-जाना आंधी-पानीकी भांति अगम रहस्य न था। वह जानते थे, रेलको आदमी ही चलाते हैं। उसके आने-जाने, 'लेट होने' का समाचार और कारण स्टेशन मास्टर साहबसे मालूम हो सकता है।

सभी लोगोंकी आंखें पूर्व में मखुआसे आती लाईन की ओर चली गयीं। इंजन का धुआं नहीं, कुछ हल्की सी धूल हरे पत्तोंके ऊपर, सूर्यके प्रचण्ड प्रकाश से सफ़ेद जान पड़ते नीले आकाशमें दिखाई दी। कानों ने कुछ अस्पष्टसा शब्द भी सुना—रेलकी सीटी और गड़गड़ा—हट नहीं, मनुष्यके कण्ठ की चीख पुकार सी।

और फिर कुछ ही क्षणमें दिखायी दिया—झण्डे उठाये बहुतसे लोग बाहें उठा चिल्लाते, नारे लगाते चले आरहे हैं। बावली भीड़के समीप पहुंचने पर सुनाई दिया—बन्दे ऽऽऽ मातरम! हिन्दू मुसलमान की ऽऽऽ जय! ......भारतमाता की ऽऽऽ जय! ...... गांधीबाबा की ऽऽऽ जय! हमारे . ... लीडर ऽऽऽ जेलसे छोड़ो!..... अंग्रेज सरकार का ऽऽऽ नास हो! ......"

प्रतीक्षासे उकता दो बेर उन्होंने कागज लिखने स्टेशन मास्टर साहबसे मुस्कराकर आदाब कर पूछा-"गाड़ी क्या लेट है!...कितनी लेट है!"

स्टेशन मास्टर साहबने समीप मेज पर रखे टेलीफोन (इंटरलॉकिंग टेलिफोन) को गाली दे, उत्तर दिया-".. कुछ बोल ही नहीं रहा। तार भी नहीं चल रहा है। जाने मखुआ स्टेशन पर सब मर गये!"

पूर्वमें सूर्य अमराइयोंसे बांस भर ऊपर चढ़ गया। धूप फैल गई। चारों ओर कमर तक बढ़ कलके खेतों पर पड़ी हल्की ओससे शीतल होती वायु, ओस उड़जानेसे गरम होने लगी। समयको केवल सुबह, दोपहर और सांझमें बांट सकने वाले देहाती भी, प्लेटफार्म पर डाले बैठे समयको बरबादी अनुभव कर, बैठेसे खड़े होकर और खड़ेसे बैठ कर व्याकुलता प्रकट करने लगे। पण्डितजी बार-बार आँखोंके आगे हाथसे छाया कर आकाशमें बांह फैलाये सिगनलकी ओर देखते। वह यों निष्प्राण, निश्चल खड़ा था, जैसे कभी सदियोंसे हिला ही न हो। पण्डितजीके माथे पर हल्का-हल्का पसीना आने लगा। कुछ धूपमें अचकन की गरमीसे, अधिक तारीख पर कचहरी न पहुँच सकनेकी चिन्तामें।

* * * *

बिहटा स्टेशन पर गाड़ीकी प्रतीक्षा करने लोगोंकी व्याकुलता दोपहरमें परिवर्तित होगयी। भीड़में किसीको सम्बोधन कर कोई कुछ नहीं कहता परन्तु सभी लोग सब कुछ समझ जाते हैं। सुननेकी भी आवश्यकता नहीं होती। लोग खबरकी समझ लेते हैं। नारे और जय-जयकार की निरंतर पुकार लगाती भीड़के पसीनेसे चमकते सांवले चेहरे लाल हो रहे थे। भर्राये हुये गले से लोग पुकार रहे थे "देशमें देसी लोगोंका राज हो गया!" [illegible] निकल कर उछल जाय। [illegible] और [illegible] हो चुके, [illegible] और [illegible] हाथ-पांव [illegible]। [illegible] हुए थे, [illegible]। [illegible] दूर [illegible]।

[illegible]

[illegible]

वफ़ादारी की सनद

यशपाल

पण्डित बंसीधर शहर जानेकी पोशाकमें, पयजामा, अचकन और किश्तीनुमा
टोपी पहने, मुंह अंधेरेसे बिरहरा स्टेशनपर टहलते हुये गोरखपुर जाने
गाड़ीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पन्द्रह बीस दूसरे दिहाती भी मोटे-मैले कपड़ोंमें, कंधे पर
झोली और हाथमें लाठी लिये शहरकी गाड़ीकी प्रतीक्षामें, स्टेशनके प्लेटफ़ार्म पर बैठे बा
रहे थे। एक बहू चटकीली धोती पहने, दायें हाथसे थमे घूंघटमें दो उंगलियोंसे आंखभरके
जगह बनाये भीड़की ओर पीठ किये चावसे नये दृश्य देख रही थी। दूसरी मैले आंचलमें
मैले बेटेको नजरसे ओट किये बासी रोटीका टुकड़ा खिला रही थी। कोई नये ढंगका
बीड़ी पी रहा था और कहीं दो-चार पुराने ढंगके आदमी मिल, लत्ता या बान सुलगा, चिल
दम खींच प्रतीक्षाके शैथिल्यका उपाय कर रहे थे। बात-चीत प्रायः कचहरी सम्बंधी थी। ग
नौ बजे गोरखपुर पहुंचती थी। कचहरीमें तारीखपर पहुंचनेवाले लोगोंकी ही भीड़ प्रायः होती

गांव भरमें पण्डित बन्सीधर ही एक एण्ट्रेंस तक पढ़े, सफ़ेदपोश, भले आदमी थे।
पढ़ लिखकर भी उन्होंने सरकारी नौकरी नहीं की। अपना पुश्तैनी चला आया काम
सम्भाला। आस-पास कई पुरवोंमें बंटी, घरकी सत्तर-अस्सी बीघे ज़मीन थी, एक बड़
दुकान, जमा हुआ लेन-देनका कारोबार, और कोठे भी भर लेते। सरकारी नौकरीमें मुसाहिबत
चाहे जितनी हो परन्तु भीतरसे खोखला ही रहता है। लावनाके थानेके दारोगा साहेब,—यों बारह
कोस तक उन्हें सलामी मिलती रहे,—आये दिन पण्डितजीके यहां रुक्का भेज रकम उधार मंगाते
रहते थे। पण्डितजी उनके सामने चाहे सलाममें दोहरे हो जांय, पर दारोगा साहबकी क
बिसात कि उनकी बात टाल दें।

पण्डितजी भी कचहरीकी ही बात सोच रहे थे। मुरकई और गफ़ूरा दोनोंके मामलेमें फ़ैसले
तारीख थी। राधे पर बेदखलीकी दरख़ास्त देनेको थी। सोच रहे थे, इतना तो वकीलका मेहनता
लग गया। दस-एक रुपये फ़ैसलेकी नक़लके नाज़िर ज़रूर लेंगे, डेढ़-एक सौ ऊपरसे लग गय
सही, तीन बरसकी कमाई ज़मीनकी निकल गई। लगान जेबसे भरेंगे। और, फिर फ़ायदाही फ़ा
है। एक दफ़े खर्च हुआ तो क्या? इस मोल गोड़ंकके पच्चीस बीघे खेत जुरे नहीं। फिर
बाज़ारमें कुछ काम था। शामको चार बजेकी गाड़ी पकड़ले तभी ठीक है। नहीं तो श
खर्च ही ख़र्च है, आराम सही कुछ नहीं...। लेकिन गाड़ी सवारीको क्या हो गया?...पौ
थी।

× × × ×

प्लेटफ़ार्म पर बैठे दूसरे लोग गाड़ीका आना जाना भाग्यकी बात मान, बति
मका दम लगाने, पसीनेसे गंधाते मोटे-मैले कपड़ोंके नीचे

कचहरी जैसे प्रतीक्षा कर रहे थे। परन्तु उनके लिये [illegible] रेलगाड़ीका आना-जान
आधी आदमीकी भाँति अलग महत्व न था। वह जानते थे, रेलको जल्दी ही चलने हैं। उन
आने-जाने, 'लेट रनिंग' का समाचार और कारण स्टेशन मास्टर साहबसे मालूम हो सकता है

तभी गाड़ीकी ओरसे पूर्वमें मनुष्यने अपनी गर्दन की और [illegible] नहीं। इंजन का धुआ
नहीं, कुछ हल्की सी धूल उड़ रही थी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नीचे
आकाशमें दिखाई दी। लोगों ने कुछ अस्पष्ट स्वर भी सुना—रेलकी सीटी और तड़-तड़ा—
हर नहीं, मनुष्यके कण्ठ की चीख पुकार थी।

और फिर कुछ ही क्षणमें दिखाई दिया—लम्बे डंडे के ऊपर लोग [illegible] झंडा निकले, मां
लगाये चले आते हैं। वायुकी झोंकके समीप पहुंचने पर सुनाई दिया—वन्दे ऽऽऽ मातरम ! हिन्
मुसलमान की ऽऽऽ जय ! .. .. भारतमाता की ऽऽऽ जय ' .. गांधीबाबा की ऽऽऽ जय
हमारे . . लीडर ऽऽऽ जिन्दाबाद ' अंग्रेज सरकार का ऽऽऽ नाश हो! ......

प्रतीक्षासे व्याकुल हो बेर उन्होंने व्यग्र [illegible] स्टेशन मास्टर साहबसे मुस्कराकर आश
कर पूछा—"गाड़ी क्या लेट है ?... कितनी लेट है ?"

स्टेशन मास्टर साहबने समीप मेज पर रखे टेलीफोन (कंट्रोलिंग टेलिफोन) को गार
दे, उत्तर दिया—" कुछ बोल ही नहीं रहा। तार भी नहीं चल रहा है। जाने मनुआ स्टेश
पर सब मर गये !"

पूर्वमें सूर्य अमराइयोंसे बांस भर ऊपर चढ़ गया। धूप फैल गई। चारों ओर कमर त
बढे कसलें खेतों पर पड़ी हल्की ओससे शीतल होती वायु, ओस उड़ जानेसे गरम होने लगी
समयको केवल सुबह, दोपहर और सांझमें बांट सकने वाले देहाती भी, प्लेटफार्म पर ठा
बैठे समयकी बरबादी अनुभव कर, बैठेसे खड़े होकर और खड़ेसे बैठ कर व्याकुलता प्रकट कर
लगे। पण्डितजी बार-बार आँखोंके आगे हाथसे छाया कर आकाशमें बांह फैलाये सिगनल
ओर देखते। वह यों निष्प्राण, निश्चल खड़ा था, जैसे कभी सदियोंसे हिला ही न हो। पण्डितजी
माथे पर हल्का-हल्का पसीना आने लगा। कुछ धूपमें अचकन की गरमीसे, अधिक तारीख
कचहरी न पहुँच सकनेकी चिन्तामें।

* * * *

बिरहरा स्टेशन पर गाड़ीकी प्रतीक्षा करते लोगोंकी व्याकुलता कौतूहलमें परिवर्तित होगयी
भीड़में किसीको सम्बोधन कर कोई कुछ नहीं कहता परन्तु सभी लोग सब कुछ समझ जाते हैं
सुननेकी भी आवश्यकता नहीं होती। लोग स्वयमही समझ लेते हैं। नारे और जय-जयकार
निरंतर पुकार लगाती भीड़के पसीनेसे चमकते सांवले चेहरे लाल हो रहे थे। भर्राये हुये ग
से लोग पुकार रहे थे "देसमें देसी लोगोंका राज हो गया !" पीढ़ीयोंसे दबी निबलकी घृ
और प्रतिहिंसा ऐसे उछल पड़ी, जैसे कोई फौलादी स्प्रिंग कब्जेसे निकल कर उछल जाय
पीढ़ियों तक भूख न मिटने और आवश्यकताएँ पूर्ण न होनेसे आत्मविश्वास और गौरवको खोचुके
ऊसरमें उगे पौधों जैसे बेपनपे, गठियाएसे लोग, गरूर और सरूरमें हाथ-पाँव फेंकने लगे। जै
चीटियोंका दल सदा उन्हें खाती रहनेवाली गिरगिटका सिसकता शव पाकर उस पर टूट प
चढ़ बैठे। वैसे ही सदा से त्रस्त, दलित रहनेवाली, मनुष्यत्व खो चुकी प्रजा अपने विश्वास
झिझकते हुए अँग्रेजी साम्राज्यके शव पर कूदने लगी।

उस साम्राज्यका अंग-भंगकर, उसे समाप्त कर देनेके लिये जो कुछ भी सरकारकी शक्ति
चिह्न रूप था, उसे उखाड़ फेंकने, तोड़ डालने और भस्मकर देनेके लिये भीड़ तत्पर हो गयी।

पण्डित बंसीधर, मुरई, गफूरा सब कचहरी भूल गये। उनपर हुकुम चलाकर फैसला दे
वालेका अस्तित्व न रहा। हिन्दुस्तानियतके दमसे सीना फुलाये, अपनी और अपने देशकी ज

[illegible]

जनताकी असुविधाओंका विचार होता तो केवल इससे अधिक दो एक चतुर व्यक्तियोंके
या पण्डित बंशीधरको।

उमड़ती भीड़ लावनके थानेकी ओर चली। बारह कोसमें विशाल ब्रिटिश साम्राज्य जिसके
विस्तारकी सीमा सूर्य भगवान भी लाँघ नहीं पाते, का प्रतिनिधि वही थाना था।
ग्यारह सिपाही और एक दारोगाजी। चालीस हजारसे अधिक प्रजा उन्हें अंग्रेज सम्राटका प्रति-
निधि मान सिर झुकाती चली आती थी। जय-जयकार करती, झण्डा फहराती भीड़ थानेकी
ओर बढ़ती चली जा रही थी। अपनी शक्तिके अधिकारसे पण्डितजी भीड़के मध्यमें जनताके
मनोनीत नेता बने चले जा रहे थे।

दारोगा साहबने धमकी दी कि गोली चला देंगे। विजयके उन्मादमें बावली जनताने
कुरतेके बटन तोड़, सीना खोल दिया कि चलाओ गोली। बन्दूककी धमकीसे बावली भीड़
ईंट पत्थर उठा सामना करनेके लिये तैयार हो गई। पण्डितजीने समझाकर कर भीड़को शान्त
किया। दूरदर्शी दारोगा साहबने हँस कर कहा—"अरे हम तो आपही लोगोंके नौकर हैं। रैयत
ही हमारी सरकार है, जिसका दिया खाते हैं। अंग्रेज कौन विलायतसे रकम ढोकर लाते हैं?
और मरे ले जा रहे हैं उल्टे !"

भीड़ने दारोगा और सिपाहियोंको गांधी टोपी पहना दी और जोरसे बंदेमातरमका नारा
लगा हिन्दू-मुसलमानकी जय पुकारी ! पण्डितजीने अपने हाथों थानेकी इमारत पर लगे डण्डेपर
कौमी झण्डा बांधा और देशकी आजादीके लिये प्राण दे देनेकी प्रतिज्ञा की।

तीन दिन तक बिरहरा, मधुआ, लावता, और निकरमें रामराज्यका आनंदोत्साह रहा। रैयत
अपने कचहरीके झगड़े भूल गई, जैसे सबकी सब शिकायतें मिट गई हों। लगानकी दुश्चिन्ता भुला,
किसानोंने तेलमें छौंकी अरहरकी दालमें खटाई मिला कचर-कचर भात खाया। बासी रोटीसे
गुड़ खाया। पण्डितजी बिना किसी चुनावके, बिना किसी नियुक्तिके इलाकेके पंच कहिये,
चौधरी कहिये, तहसीलदार, डिप्टी, जो कहिये, बन गये। सब ओरसे उन्हें जै रामजी और राम
पहले भी करते थे परन्तु उसमें उनके पैसे और दारोगा साहबसे

रमीका दबदबा था। अब जैसे वे रैयनके अपने हों। आँखें बदल गई। एक उछाह और उमंग
ा ओर थी।

चौथे दिन सुबह ही मखेरा और पनोलीसे तीन आदमी परेशानीकी हालतमें शरण ढूंढते
लहरा पहुँचे। एकको बाँहमें बंदूककी गोलीका घाव था। उन्होंने बताया–"ज़िलेसे बड़ी
री फ़ौज और पुलिस तोप बन्दूक लिये बरावनको दबाती चली आरही है। गांधीजी की जय
हारने, गाधी टोपी लगाने और कांग्रेसका झण्डा उठानेवाले सब लोग गिरफ्तार हो रहे हैं।
री भारी जुर्माने हो रहे हैं। जहाँ बागियोंका पता नहीं चलता, सरकार गावमें आग दे देती
। सिपाही बहू-बेटियोंको बेइज़्ज़त कर रहे हैं। बड़े-बड़े किसानोंकी जमीन-जायदाद जब्त हो
हैं। बहुत जगह रियाया और फ़ौजमें लड़ाई हुई; "फ़ौजने गोली चलाई।"

बिल्हरामें आतंक छा गया। गफूरे और कानसिंहके चेहरे पर भी झाँई फिर गई परन्तु
न्होंने सबके सामने खम ठोककर कहा–"सरी चाहे सिर उतर जाय, दुश्मनके आगे सिर नहीं
झुकायेंगे। जो अपने बापकी औलाद होगा, मर जायगा पर पीठ नहीं दिखायेगा।" वे अपने
र आ बल्लम और गड़ाँसा पैनाने लगे।

पण्डितजीने भी सुना और हामी भरी परन्तु मनमें सोचते रहे, "सरकारसे भिड़ना क्या
ल है!...मगरसे बैर कर पानीमें रहना। ससुरे नंगोंका क्या है? उनकी कौन इज़्ज़त है।
न्हें किसका डर? भले आदमीको डर ही डर है।

चौथे दिनका चौथे पहर बिल्हराके पाससे गुजरती गोरखपुरकी बजरीली सड़क पर लारियाँ
ी लारियाँ चली आईं। यह लारियाँ दूसरी रंगबिरंगी, नित्य दिखाई देनेवाली लारियोंसे भिन्न
भूरी-भूरी, ख़ाकी-ख़ाकी थीं।

सड़कके किनारे चोर और दरोग़ाका खेल खेलते बच्चोंने गाँवमें जा, भयसे फैली आँखोंसे
ख़बर दी, सरकार आई है।

गाँवसे बाहर आ आशंकित प्रजाने देखा—ख़ाकी मोटरें गोईंड की धरतीमें फ़सलको रौंदती
चली आरही हैं। ऐसी मोटरें लोगोंने कभी देखी न थीं। लोहेकी चादरसे मढ़ी और उसमें मगर-
मच्छकी थूथनी सी बाहर निकली बन्दूकें। रैयतका दिल बैठ गया। बहुएँ घरमें जा छिपीं और
बच्चे उनकी गोदमें।

ख़ाकी वरदी पहने, भारी बूटोंसे धरतीको कँपाते सिपाही कंधोंपर बन्दूकें लिये, गांवमें
घुस आये। पीछे-पीछे एक साहब लम्बे-लम्बे, पतले-पतले टोपके नीचे भी धूपकी चकाचौंधमें
अधमुँदी आँखोंसे एक नज़रमें सब कुछ देखते, दाँतोंमें दबे चुरटसे हल्का-हल्का धुआँ छोड़ते
आ रहे थे। थानाके दारोग़ा साहब वर्दी पहने साहबके आगे झुक-झुक कर बताते चले आ रहे
थे। साहबके लाल-सफ़ेद चेहरे पर एक अजीबसी तिरस्कारपूर्ण मुस्कराहट थी, जैसी गड़रियेके
कुत्तेके मुखपर होती है, जब सैकड़ों भेड़ोंका झुण्ड उसकी एक भों-भोंसे भग्न होकर सिमिट
जाता है।

गाँव पल्टनसे घिर गया, गाँवके उत्साही नौजवान, गफूरा, मनई कानसिंह, जिन्होंने
अंग्रेज़ी राज मिटाने और सुराज स्थापित करनेमें प्रमुख भाग लिया था, सनक गये। जरनैल
साहबकी कुर्सी गाँवके बीचमें पीपलके नीचे लग गई। तहसीलदार साहब अदबसे सामने खड़े थे।
दारोग़ा साहब थानेके सिपाहियों, चौकीदारों और पकड़निया सिपाहियोंको लिये बदमाशोंको
गिरफ़्तार कर रहे थे। मनई, गफूरा और कानसिंहका कहीं पताका न चला।

दारोग़ा साहब अपना दल लिये पण्डितजीकी चौपाल पर पहुँचे। पण्डितजीने शरीरको
कम्पन बरामेकर निगाहोंमें मुलाहिज़ा भरे दारोग़ा साहबकी ओर देखा। दारोग़ा साहब नितान्त
कर्तव्यनिष्ठ थे; जैसे वे पण्डितजीको पहचानते ही नहीं! पण्डितजीको भी हिरासतमें ले लिया गया।

अर्दली साहबके सामने पहुँचते ही पण्डितजीने झुककर सलाम किया। बसन्त भी साथ था। उन्होंने अर्दलीसे कहा " हुजूर हम शरीफ आदमी हैं, सरकारके सेवक हैं। पर बदमाशोंने जबरदस्ती हमारे घर पर बागियोंका झण्डा लगा दिया। हुजूर हमें [illegible] हम बदमाशोंका पता दे सकते हैं।"

साहबके चेहरे पर कोई परिवर्तन नहीं आया। मुंहसे चुरूट हटाये बिना कहने [illegible] दिया, "बोलो।"

पण्डितजी सिपाहियोंको साथ ले अपने मकानके कोठेमें गये और वहाँ पहुंचे, जहाँ बलवन्तसिंह छिपे हुये मिले।

साहबके लिये गाँवके बाहर खेमा लग गया था। गाँवकी दुर्गंधसे उनका वहाँ [illegible] उपस्थिति आवश्यक न जान, वे शहर चले गये। उनके चले जानेके पश्चात् दारोगाजी शान्ति स्थापनाकी उचित व्यवस्था करने लगे।

पण्डितजीके सरकारी गवाह बनकर छूट जानेके उदाहरणसे कहीं सभी लोग गवाही न [illegible] लग जायँ दारोगा साहबने पण्डितजीके छोटे भाई रामधर और बड़े पुत्र गिरधारी को गिरफ्तार कर लिया। उन्होंने सिपाहियोंको आज्ञा दी कि खास बदमाशोंके अलावा शेष सब रैयतके दस-दस जूते लगाकर छोड़ दिया जाय !

रैयतको जूते लगानेसे सिपाहियोंका मनोविनोद अवश्य हुआ परन्तु इससे उनकी पूर्ण निवृत्ति न हुई। उनके भोजन की व्यवस्था के लिये दारोगा साहबने हुकुम दिया, "दो मन आटा, दूसरी रसद और एक कनस्तर घी पण्डित बंसीधर के यहाँ से ले लिया जाय !"

पण्डितजीके एतराज करने पर सूबेदार साहबने एक सिपाहीको दो जूते पण्डितजीके सिर पर लगानेका हुकुम दे दिया।

जूते खा पण्डितजी घर लौटनेके लिये पीपलके तलेसे हट आये, परन्तु पहुँचे सीधे बड़े साहबके खेमेमें।

अर्दलीके हाथमें पांच रुपयेका नोट दे उन्होंने साहबको सलाम बोला।

मुँहमें चुरूट दबाये साहबने पूछा—' वेल ! ' पण्डितजीने अपनी शिकायतें सुनाईं :

" हुजूर, वफादार रियायाके साथ ऐसा जुल्म हो रहा है ? "

' हूँ ' साहबने उत्तर दिया और अर्दलीको हुकुम दिया —' दारोगाको बोलो, इस आदमीके घरको तकलीफ नहीं होगा। '

और फिर सज्जनताके नाते पण्डितजीको अंग्रेजीमें आश्वासन दिया, " सरकारकी प्रेस्टीज (Prestige) क़ायम करनेके लिये ऐसा भी करना पड़ता है। कोई बात नहीं है।— ' बगावतके परिणाममें बहुत कुछ होता है। '

अनुनयके स्वरमें पण्डितजीने दरख़ास्त की, हुजूर हम शरीफ "ख़ान्दानी Respectable" हैं। हमें हुजूरके हाथसे शराफत और वफादारीकी सनद मिल जाय ! हमसे बदमाशोंके जुर्मका हरजाना न लिया जाय ! "

साहब पण्डितजीके चेहरे पर निगाह लगाये चुप रहे। उनकी आंखों और होठों पर अब भी वही मुस्कराहट मौजूद थी। मेज़से फ़ाउन्टेनपेन उठा उसे खोलते हुये उन्होंने कहा— " हम लिखेगा तुम शरीफ वफादार हिन्दुस्तानी है। "

साहबने खड़े-खड़े पुर्जे पर दो पंक्तियां लिख मुस्कराते हुए काग़ज़ पण्डितजी ओर बढ़ाते ये कहा—' अगर तुम हमारा मुल्कका आदमी होता, हम तुमको दग़ाबाज़ traitor कहता, गोली मार देता। "

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] कर्त्तव्य समझकर उचित व्यवस्था करने लगे।

पण्डितजीके [illegible] खबर [illegible] आनेके उपलक्ष्यमें यहां सभी लोग [illegible] लग आये दारोगा साहबने पण्डितजीके छोटे भाई रामधर और बड़े पुत्र गिरधारी को गिरफ्तार कर लिया। उन्होंने सिपाहियोंको आज्ञा दी कि तमाम बदमाशोंके अलावा [illegible] दस-दस जूते लगाकर छोड़ दिया जाय!

रैयतको जूते लगानेमें सिपाहियोंका मनोविनोद अवश्य हुआ परन्तु इससे उनकी क्षुधा-निवृत्ति न हुई। उनके भोजन की व्यवस्था के लिये दारोगा साहबने हुकुम दिया, "दो सेर आटा, दूसरी रसद और एक बकरा भी पण्डित बंसीधर के यहां से ले लिया जाय!"

पण्डितजीके एतराज करने पर थानेदार साहबने एक सिपाहीको दो जूते पण्डितजीके सिर पर लगानेका हुकुम दे दिया।

जूते खा पण्डितजी घर लौटनेके लिये पीपलके तलेसे हट आये, परन्तु पहुँचे सीधे कलेक्टर साहबके सामने।

अर्दलीके हाथमें पांच रुपयेका नोट दे उन्होंने साहबको सलाम बोला।

मुँहमें चुरुट दबाये साहबने पूछा—'वेल!' पण्डितजीने अपनी शिकायतें सुनाई:

"हुजूर, वफादार रियायाके साथ ऐसा जुल्म हो रहा है!"

'हूँ' साहबने उत्तर दिया और अर्दलीको हुकुम दिया—'दारोगाको बोलो, इस आदमीके घरको तकलीफ नई होगा।'

और फिर सज्जनताके नाते पण्डितजीको अंग्रेजीमें आश्वासन दिया, "सरकारकी रोब (Prestige) क़ायम करनेके लिये ऐसा भी करना पड़ता है। कोई बात नहीं है।... 'बगावतके परिणाममें बहुत कुछ होता है।'

अनुनयके स्वरमें पण्डितजीने दरख़ास्त की, हुजूर हम शरीफ़ "खान्दानी Respectab' है। हमें हुजूरके हाथसे शराफ़त और वफ़ादारीकी सनद मिल जाय! हमसे बदमाशोंके जुर्मका

[...लकृष्ण शर्मा 'नवीन']

देवि, रूसकी भूमि चण्डिके
जग करता है तव वन्दन;
धन्य पुत्र तेरा स्तालिन यह,
धन्य सभी तेरे जनगण!

(४)

तेरा लेनिन अमर रहेगा
जन इतिहास कथाओंमें
तेरा स्तालिन अमर सदा है,
विप्लव-युद्ध-व्यथाओंमें।

मानव विमिर्मुक्तिका सपना
इन दोनोंने मूर्त किया,
जन-गणकी यात्रामें इनने
एक नवीन मुहूर्त किया,

तू निर्बन्ध, मुक्त है तेरे
सब बीहड़ जंगल उपवन,
धन्य पुत्र तेरा स्तालिन यह,
धन्य सभी तेरे जनगण!

(५)

तुझे नष्ट करने आया है,
इक शोणित-पायी दानव,
किन्तु, देवि, क्या ही जूझे हैं
ये तेरे सपूत मानव!

तेरी वोल्गा, तेरी नीपर
उमड़ी है कर घन गर्जन,
तेरी डॉन प्रशान्त वाहिनी
करती आज भीम तर्जन!

सभी आज रण-रंग रँगे हैं:
तव पर्वत, तेरे पाहन!
धन्य पुत्र तेरा स्तालिन यह,
धन्य सभी तेरे जनगण!

(६)

तू नितान्त अविजेय धरित्री,
अति बलिदानी सुत तेरे;
तू है नव सन्देशवाहिनी,
नवादर्श अद्भुत तेरे!

जिसने तुझे हड़पना चाहा
उसके खट्टे दाँत हुए;
नेपोलियन सदृश योद्धा र[...]
सहसा भूमि-निपात हुए

हिटलरका भी तव ज्वालामें
निश्चय होगा सर्व-दहन,
धन्य पुत्र तेरा स्तालिन यह,
धन्य सभी तेरे जन-गण

केन्द्रीय कारागार, बरेली
९ अगस्त, १९४२

यह पथ लेनिनग्राडका !

बालकृष्ण शर्मा "नवीन"

यह पथ लेनिनग्राडका;
यह है जन-पथ; यह नहीं पथ किसी सम्राटका !
यह पथ लेनिनग्राडका !

(१)

माएँ, बहनें, बेटियाँ देतीं निज हिय रक्त हैं;
इसकी रक्षाके लिये सब जन-गण अविभक्त हैं,
मानव देहोंकी बनी फ़ौलादी दीवार है;
एक एक नर-मुण्ड इस गढ़की दृढ़ मीनार है;
लेनिनका आदर्श यह बना स्वरूप विराटका !
यह पथ लेनिनग्राडका !

(२)

यहाँ भयंकर, वीर वर, स्तालिन नर शार्दूल यह;
स्वयं पिनाकी सम बना शोभित लिये त्रिशूल यह;
हर-हर करती मानाकी गंगा उमड़ी क्रोधकर;
उमड़े लेनिनग्राडके नर हियमें प्रतिशोध भर
हिटलरको दर्शन हुआ यहाँ मरणके घाटका,
यह पथ लेनिनग्राडका !

(३)

धन्य देश यह ! इसके ये नरनारी धन्य हैं !
विकट आत्म-उत्सर्गमें रूसी वीर अनन्य हैं,
समुद देश रक्षार्थ, ये शोणित अर्पण कर रहे,
जो लेनिनके स्वप्नोंका ये नित तर्पण कर रहे !
नाश करेंगे ये विकट हिटलरके सब ठाटका !
यह पथ लेनिनग्राडका !

केन्द्रीय कारागार बरेली, [illegible],
[illegible] १९ जून, १९४२,

कमर

ताई

प्रकाशचन्द्र गुप्त

उस विशाल सामन्ती खँडहरके एक कोनेमें हमारी ताई रहती थीं—एक टूटे-फूटे
कमरे में जिसकी लगातार मरहम-पट्टी होती थी और फिर भी जो मानो भरभरा
आकर्षण शक्तिसे खिसका ही पड़ता हो। हमारे पुरखोंने दिल्ली त्याग कर यह मकान बनाया था,
किसी ज़मानेमें इसके बाहर के बैठके और अन्तःपुरके कमरे मधुर हास्यसे गूँजते होंगे, किन्तु
अब इस खँडहरका वायु-मंडल इतना दूषित और विषाक्त हो गया था कि यहाँ साँस लेना भी
कठिन था। इस आलीशान मकानके खंड-खंड हो चुके थे; जगह-जगह पीपलके पौधे फूट रहे
थे; कुँए पर "ताम्रपर्ण शतमुख पीपलके निर्झर" झरते थे। एक ओर हमारे पितामहकी
लगाई गुलबाँस की बेल फूल-फूलकर मानो खँडहरका उपहास करती थी। टूटी-फूटी
बगीचीमें, जहाँ नित्य प्रातः एकान्तसेवी 'दिशा' खोजते थे, अने
विषधर निकलते थे जिनकी गिनती हमारे पुरखोंमें थी। वह किसी अज्ञात कारणसे
मायाकी रक्षामें लगे थे। इस भग्न सामन्ती विरासतके अनुरूप वे ही उसके उत्तरा-
धिकारी और रक्षक थे। इस वृहद् कुलकी एक ही शाखा फली-फूली थी। खँडहरके एक
कोनेकी मरम्मत हुई थी, और वह तिमंजला कोना शेखीसे अकड़ा शेष खँडहरपर नये धनिक
भाँति हँस रहा था। कुलके शिक्षित युवा दूर-दूर कमाईके लिए निकल गए थे, केवल बड़े-बूढ़े
खँडहरके पुष्ठ-पोषणके लिए बच गए थे। इन बुज़ुर्गोंमें कभी-कभी भयंकर वाग्युद्ध छिड़ता था,
जिसका प्रभाव पूरे कुल के जीवन पर पड़ता था; उस दिन चूल्हे भी न जलते थे, आपसकी
बोलचाल बंद हो जाती थी। पुरुषोंके संग्राम की छाया स्त्रियों पर और बच्चोंके खेल पर भी
पड़ती थी।

इस वातावरणमें अनायास ही ताई कहीं दूरसे आकर बस गईं। उनके तीन छोटे-छोटे
बच्चे थे। ताऊ बीमार थे; जीवन-संग्रामसे थके और जर्जर, अपने प्राण त्यागने किसी आदिम स्वभा-
के अनुसार इस अन्ध-गुहामें लौट आए थे। जीवनमें सफलताके लिये उन्होंने अनेक प्रयत्न कि
थे; बहुत सिर मारा था, किन्तु अब अस्त्र डालकर मृत्युकी प्रतीक्षा कर रहे थे। तीन बार उन-
विवाह हुआ था; पहली दो पत्नियाँ उनका साथ न दे सकीं किन्तु यह ताई लौह-शलाका
समान कठिन थीं। उनके सुगठित शरीर और शान्त मुद्रा पर जीवनके प्रहारोंका कोई स
प्रभाव न था।

ताऊ और उनके तीन बच्चे के जीवन-यापनके लिए सामन्ती कुलने व्यवस्था करनेका भरम
किया। एक दूकानका किराया उनके नाम कर दिया गया। और मासिक सहायताका प्र
... ...। "हमारी ताई भी खूब हैं" ...
किन्तु था

विधवा असहाय बैठी है, तो दूर मदद देने क्यों जाय ?" ताई दूरके रिश्तेकी ताई थीं; चाची ख़ास अपनी थीं। कुलमें सभी ने ताईकी दशा पर आँसू बहाए; ताऊकी मृत्यु पर एक कोहराम मचा; आँसुओंके पारावार बहे; किन्तु कुछ ही दिन बाद कलह, द्वेष और फूटने फिर खँडहरपर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। कानाफूसी शुरू हुई। ताऊने अवश्य ही परदेसमें अपार धन कमाया होगा। ताईके कपड़े फटे थे और बच्चोंके पास तो थे भी नहीं; किन्तु एक दिन चाचीने स्वयं अपनी आँखों से ताईको मिठाई खाते देखा था; ताईकी जीभ चटोरी थी; तभी तो उन्होंने अपने घरका यह हाल कर लिया ! ताईका चरित्र ठीक न था : वह सहायताकी पात्र न थी।

अन्तमें परिवारकी सहायताने यह रूप ग्रहण किया कि ताई कुटाई-पिसाई करें और जीविका अर्जन करें। किसीके यहाँ काम होता तो ताई बुलायी जाती। उन्होंने अपने बड़े लड़केसे चाट भी बिकवाई, किन्तु यह प्राणी बड़े निरीह थे और दुनियाके धन्धेसे सर्वथा अपरिचित थे। यह सिलसिला भी न चला और ताई थक कर बैठ गयी। अपनी पराजयका क्षोभ वह बच्चोंपर उतारने लगी।

आज भी जब मुझे ताईका घर याद आता है तो कठिन अवसादका पत्थर सा मन पर रख जाता है। वर्षाके दिन, टप-टप करता घर, सीली स्याह दीवारें, बाहर हू-हू करती हवा का अंधड़; इस घोर अन्धकार बियाबानमें इस नारीकी जीवन-बाती मद-मद जल रही थी। चारों ओर फैल रही सिगरेट बनानेकी बेकार बड़ी पड़ी थी। सामन्तवाद, उपनिवेशवाद और पूँजीवादकी मिलन-भूमि पर इस क्षुद्र कुटुम्बका होम हो रहा था।

ताईके बड़े लड़केको एक संतानहीन सेठ गोद लेना चाहता था, किन्तु बूढ़े कुलपतिने इसमें अपनी कुल-मर्यादाकी हानि समझी। लड़का इधर-उधर चौका-बर्तन करने लगा। नौकरकी हैसियतसे उसने अपने कुलका मान रक्खा और यह अपार यश कमा कर स्वर्ग का फल भोगने चला गया। लड़कीका दिमाग कुछ खराब था, वह विक्षिप्त हो गया। छोटे लड़केको एक दिन कोई रोग लेकर चलता बना। इस प्रकार ताईका छोटासा कुटुम्ब बरबाद हो गया।

ताई अक्सर कूट-पीस करने कुलके धनिक सम्बन्धियोंके यहाँ जाती थीं। उनमें एक अधेड़ चाचा कुँआरे थे। किसी कारणवश उनका विवाह न होता था और अब आशा भी न रही थी। इन्होंने ताईका पल्ला पकड़ा। एक दिन ताईने अवांछित नये शिशुको जन्म भी दे डाला। कुलमें बड़ा तूफान उठा। इसकी चर्चा हुई। अन्तमें अप्रत्याशित उदारता दिखाते हुए कुलपतिने दोनोंका घर एक कर दिया। धनिक चचाने साथ चलनेका सहारा लिया। अपनी कुल-वधूने उनका वरण करके जीवनकी रक्षा की।

इस बातको बहुत दिन हो गये, किन्तु फिर भी इसकी यह ... सांस यह मन अन्दर ही अन्दर सुलगती रहती है और कभी-कभी भड़क उठती है। ऐसे अवसरमें इस आगकी चिनगारियाँ दूर-दूर फैल जाती हैं और उनसे ... जो कोई ... उसमें ... होने लगता है।

ताई

प्रकाशचन्द्र गुप्त

उस विशाल सामन्ती खँडहरके एक कोनेमें हमारी ताई रहती थीं—एक
कमरे में जिसकी लगातार मरम्मत-पुताई होती थी और फिर भी जो मानो
आकर्षण शक्तिसे खिंचता ही पड़ता हो। हमारे पुरखोंने किसी स्थान पर यह मकान बनाया
किसी जमानेमें इसके बाहर के बैठके और अन्तःपुरके कमरे मधुर हास्यसे गूँजते होंगे, कि
अब इस खँडहरका वायु-मंडल इतना दूषित और विषाक्त हो गया था कि वहाँ साँस लेना
कठिन था। इस आलीशान मकानके खंड-खंड हो चुके थे; जगह-जगह पीपलके पौधे फूट
थे; कुँए पर "तामसी ठकुरा पीपलके निशर" झरते थे। एक ओर हमारे
लगाई गुलबाँस की बेल फूल-फूलकर मानो खँडहरका उपहास करती थी। टूटी-फूटी
बगीचीमें, जहाँ नित्य प्रातः एकान्तसेवी 'दिशा' खोजने थे,
विषधर निकलते थे जिनकी गिनती हमारे पुरखोंमें थी। वह किसी अज्ञात का
मायाकी रक्षामें लगे थे। इस भग्न सामन्ती विरासतके अनुरूप वे ही उसके उत्तरा-
धिकारी और रक्षक थे। इस बृहद् कुलकी एक ही शाखा फली-फूली थी। खँडहरके एक
कोनेकी मरम्मत हुई थी, और वह तिमंजला कोना शेखीसे अकड़ा शेष खँडहरपर नये धनिककी
भाँति हँस रहा था। कुलके शिक्षित युवा दूर-दूर कमाईके लिए निकल गए थे, केवल बड़े-बूढ़े
खँडहरके पुष्ट-पोषणके लिए बच गए थे। इन बुजुर्गोंमें कभी-कभी भयंकर वाग्युद्ध छिड़ता था,
जिसका प्रभाव पूरे कुल के जीवन पर पड़ता था; उस दिन चूल्हे भी न जलते थे, आपसकी
बोलचाल बंद हो जाती थी। पुरुषोंके संग्राम की छाया स्त्रियों पर और बच्चोंके खेल पर भी
पड़ती थी।

इस वातावरणमें अनायास ही ताई कहीं दूरसे आकर बस
बचे थे। ताऊ बीमार थे; जीवन-संग्रामसे थके और जर्जर,
के अनुसार इस अन्ध-गुहामें लौट आए थे। जीवनमें सफलताके
थे; बहुत सिर मारा था, किन्तु अब अस्त्र डालकर मृत्युकी प्रतीक्षा
विवाह हुआ था; पहली दो पत्नियाँ उनका साथ न दे सकीं
समान कठिन थीं; उनके सुगठित शरीर और शान्त मुद्रा
प्रभाव न था।

ताई और उनके तीन बच्चोंके जीवन-यापनके
प्रयत्न किया। एक दूकानका किराया उनके नाम कर
भी हुआ, किन्तु वह अधिक दिन न चल सका। 'हमारी'

विधवा असहाय बैठी है, तो दूर मदद देने क्यों जाय ?" ताई दूरके रिश्तेकी ताई थीं; चाची खास अपनी थीं। कुलमें सभी ने ताईकी दशा पर आँसू बहाए; ताऊकी मृत्यु पर एक कोहराम मचा; आँसुओंके पारावार बहे; किन्तु कुछ ही दिन बाद कलह, द्वेष और फूटने फिर खँडहरपर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। कानाफूमी शुरू हुई। ताऊने अवश्य ही परदेसमें अपार धन कमाया होगा। ताईके कपड़े फटे थे और बच्चोंके पास तो थे भी नहीं; किन्तु एक दिन चाचीने स्वयं अपनी आँखों से ताईको मिठाई खाते देखा था; ताईकी जीभ चटोरी थी; तभी तो उन्होंने अपने घरका यह कुहाल कर लिया ! ताईका चरित्र ठीक न था : वह सहायताकी पात्र न थी।

अन्तमें परिवारकी सहायताने यह रूप ग्रहण किया कि ताई कुटाई-पिसाई करें और ।विका अर्चन करें। किसीके यहाँ काम होता तो ताई बुलायी जातीं। उन्होंने अपने बड़े लड़केमे ाट भी बिकवाई, किन्तु यह प्राणी बड़े निरीह थे और दुनियाके धंधोंसे सर्वथा अपरिचित थे। ह सिलसिला भी न चला और ताई थक कर बैठ गयीं। अपनी पराजयका क्षोभ वह बच्चोंपर ारने लगीं।

आज भी जब मुझे ताईका घर याद आता है तो कठिन अवसादका पत्थर सा मन पर ख जाता है। वर्षाके दिन, टप-टप करता घर, लोनी खाई दीवारें, बाहर हू-हू करती हवा ा अंधड़; इस घोर अंधकार बियाबानमें इस नारीकी जीवन-बाती मंद-मंद जल रही थी। ारों ओर जंग खाती सिगरेट बनानेकी बेकार कलें पड़ी थीं। उन्हींके बीच, सामन्तवाद और ूँजीवादकी मिलन-भूमि पर इस क्षुद्र कुटुम्बका होम हो रहा था।

ताईके बड़े लड़केको एक संतानहीन सेठ गोद लेना चाहता था, किन्तु बूढ़े कुलपतिने समें अपनी कुल-मर्यादाकी हानि समझी। लड़का इधर-उधर चौका-बर्तन करने लगा। ौकरकी हैसियतसे उसने अपने कुलका मान रक्खा और यह अक्षय यश कमा कर स्वर्ग ा फल भोगने चला गया। लड़कीका दिमाग कुछ खराब था, वह बिगड़ता ही गया। छोटे लड़केको एक दिन कोई रोग लेकर चलता बना। इस प्रकार ताईका छोटासा कुटुम्ब बारह-ाट हो गया।

ताई अक्सर कूट-पीस करने कुलके धनिक संबंधियोंके यहाँ आती थीं। इनमें एक अधेड़ चाचा कँवारे थे। किसी कारणवश उनका विवाह न होता था और अब आशा भी न रही थी। उन्होंने ताईका पल्ला पकड़ा। एक दिन ताईने अवांछित नये शिशुको जन्म भी दे डाला। कुलमें ' अन्तमें असन्यादित दूरदर्शिता दिखाते हुए कुलपतिने नाम चलानेका सहारा लिया। सामन्ती कुल-वधूने

' दवे कोयलेकी भाँति यह आग
' ...के अंधड़में इस आगकी
अटूट बचना हो।

चंगेज़की तलवार

रांगेय राघव

क़त्लेआम मच रहा था। बर्बर सैनिक बाजकी तरह झपट कर अट्टहास करते हुए मांके हाथसे बालकोंको छीन कर, आकाश में उछाल देते और अपनी तलवारोंको नीचे कर देते थे। बच्चोंकी देह कट कर टुकड़े-टुकड़े हो जाती थी। रक्तसे भूमि भीग जाती थी और उसपर भयातुर सहमी हुई स्त्रियोंके आंसू टपक पड़ते थे। नगरमें हाहाकार मचा हुआ था। चारों ओर शस्त्रोंकी झंकारसे आकाश और भूमि विक्षोभ से काँप रहे थे। सैकड़ों ललनाएँ दासी बन कर बँधी पड़ी थीं और पुरुषोंके शीश राहकी धूलिमें बिखर गये थे। एक बीभत्स आर्त्तनाद चंगेज़के हृदयमें उतर कर उसकी तृष्णाको और अधिक भधका रहा था।

उस घोर कोलाहलमें चंगेज़ ने घोड़ा मोड़ दिया। सैनिकोंने देखा कि पराक्रमी चंगेज़का घोड़ा आतुर वेगसे सिर उठाये मस्जिदकी सीढ़ियोंपर चढ़ता चला जा रहा है। पल भरमें ही चंगेज़ की खूनी तलवार उठकर चमचमा उठी; साथ ही संगेअस्वदपर घोर प्रहार हुआ, जैसे तारा टूट गया हो, जैसे अँधेरेमें बिजली कौंध गयी हो।

बर्बर सैनिकोंने प्रसन्नतामें जयनाद किया। देखते ही देखते विशाल मस्जिदकी ईंट-ईंट ढह गयी।

वह चंगेज़ की तलवार थी।

और............

●

शताब्दियाँ बीत गयी हैं। आज हिटलर हार गया है। जर्मनी पर जनशक्तिने अपना झण्डा गाड़ दिया है। चारों ओर विजय दिवस मनाया जा रहा है। मैं घूम रहा हूँ।

रातके अंधकारमें दूर सुदूर अनेक-अनेक नक्षत्र धुँधले-धुँधले टिमटिमा रहे हैं। दबी हुई, मगर हल्की वायु चल रही है जैसे केवल शरीरको सुखस्पर्शमात्र देनेके लिये।

नगरमें चारों ओर हलचल है।

दीपमालिकाओंने जगमगाती शृंखलाओंसे समस्त नगरको बाँध लिया है। आकाशमें देखते-देखते एक अद्भुत रूप निखर आया है। दो सर्चलाइट को फेंककर एक विराट v (वी) जगमगा रही है। ब्रिटिश साम्राज्यकी तेज चमचमाती तलवारें जैसे महानगरके ऊपर फिर झूल रही हों; एक साम्राज्यवादके मजारपर दूसरे साम्राज्यवादने दीपक जलाये हैं।

ताजपर टिमटिमाते दीपक जल रहे हैं। उनकी मंदरश्मि से संगमर्मर स्निग्ध सा मुस्करा रहा है जैसे किसी सुंदरी के स्वच्छ कपोल पर सोनेका कर्ण-भूषण हिल रहा हो। दूर क़िले पर दीपमालाएँ हवामें काँप रही हैं। उन ... हैं, वे चल हैं, बिजली की बत्तियोंकी भाँति प्राणहीन आँखोंसे वे घूरतीं दृष्टि

... धकाधक धक्का दिया

सड़कों पर ...

विभिन्न ठेकेदारोंके कब्जेमें है। कपड़ा मिलता है, किन्तु मनुष्यका खून फटना चला जाता है।

गोरा-सा नसीर, काम सीते-सीते बोला—"अभी उस्ताद! देखा सालोंको? कैसा ढोल बज रहा है!"

उस्तादने पैरोंका चलाना रोक कर कहा—"हमने फौजोंके लिये इतने कपड़े बनाये मगर हमें छुट्टी तक नहीं मिली।"

नसीर हँसा। बोल उठा—"तो उस्ताद! समझे ये दरिंदोंकी जीत हुई है; अब तो और भी कुचलेंगे!"

दरवाये हैं। इस देशमें गांधी-द्वार, जिन्ना-द्वार नहीं, चर्चिल-द्वार और वॉवेल-द्वार हैं। उन पर थानके थान कपड़े रंग रंग कर लपेट दिये गये हैं।

दिल्ली में इसी साम्राज्यवादीकी स्वीकृतिसे यज्ञ हुआ था जिसमें अनेक मन अन्न की आहुति दी गई थी। उस समय बंगाल भूखा मर रहा था। आज विजयके इस यज्ञ में कपड़ा कट्ठों पर मँढा गया है, जब कि देशके लोग नंगे फिर रहे हैं और गांधी टोपीकी आड़ लेने वाले व्यापारी, गांधीकी आत्माको कुचलने वाले यह अत्याचारी बचा हुआ कपड़ा अपनी गद्दियोंके नीचे दाबे बैठे हैं। क्रोधके अतिरिक्त मेरे मन में कोई भाव नहीं रहा है।

राह किनारे दो सिपाही खड़े हैं। वे साम्राज्यवादके पुर्जे हैं। उनकी बात सुन कर मैं ठिठक गया। एक ने कहा—"यार! यह तो कांग्रेसी है। फिर इसने दीये कैसे जलाये हैं?"

दूसरे ने कहा—"कांग्रेसी तो नहीं है। हाँ उनकी तारीफ जरूर करता है। चंदा भी देता है मजदूर होनेको।"

"चंदा देता है?" पहले ने चौंककर पूछा—"चंदा कैसे दे देते हैं ये लोग? भाई, हमारी नौकरी अच्छी। तनख्वाह कम है तो कम ही सही, मगर देनेकी इल्लत तो नहीं?"

दोनों हँसे। और मैं चल पड़ा हूँ। लाला रामचरण कांग्रेसको भी चंदा देते हैं, सरकार को भी रुपया देते हैं, मंदिर भी बनवाते हैं। उनके एक मित्रने एक बार लिख दिया था कि वे कपड़े बंद होनेके सख्त खिलाफ हैं। उनको अत्यंत लाभ हो रहा है।

यह लाभ करोड़ोंकी भूख है। करोड़ोंकी मौत है। मनुष्यका मर जाना उनकी दृष्टिमें उतना बड़ा नहीं जितना एक पैसेका बिना बढ़के हाथ से निकल जाना। मैं पूछता हूँ क्या यह मनुष्य है? विदेशी सरकार होनेका बहाना करके जो मरघट से मरघट पार करनेमें नहीं हिचकिचाते, क्या वे क्षमा करने योग्य हैं? इन लोगोंसे घृणा करना मनुष्यसे घृणा करनेके समान है।

वह दिन दूर नहीं है जब इन गाथाओंको पढ़ कर मनुष्य बार बार क्रोधसे विक्षुब्ध होगा। एक-एक बात हमारे रक्तमें लिखी है। यह परंपराका कुछ आभास नहीं। इन हमारे सिपाही [illegible] थीं। उनके शरीरका एक-एक [illegible] एक-एक बीज थी। धरती हमारे सिपाहियोंसे [illegible] था। उस समय [illegible] था। साम्राज्य बड़ी [illegible] था। आज वह सब कुछ बदल चुका है।

[illegible] कोलाहल गूंजता जा रहा है, मैंने अब दिल्ली छोड़ी है। [illegible]

[illegible]

विभिन्न ठेकेदारोंके कब्ज़ेमें है। कपड़ा सिलता है, किन्तु मनुष्यका सुख कटता चला जाता है।

गोरा-सा नसीर बड़ा धीरे-धीरे बोला:—"अमाँ उस्ताद! देखा सालेने? कैसा ठोक रहा है!"

उस्तादने पैरोंका चलाना रोक कर कहा—"हमने फ़ौजोंके लिये इतने कपड़े बनाये मगर हमें सुई तक नहीं मिली।"

नसीर हँसा। बोल उठा—"तो उस्ताद! समझो ये दर्ज़ियोंकी जीत हुई है; अब तो और भी कुचलेंगे!"

उस्तादने सीना दबा कर सिर उठाया और पैनी आँखोंसे देखते हुए कहा—"कुचलनेमें तो कोई कसर की नहीं। लेकिन अब के दिन कुचलेंगे, हिटलर ही के दिन चला!"

उस्तादके पैर चलते हैं, पहिया घूमता है, मशीन चलती है, कपड़ा सिलता है। वह दुनियाके नंगे बदनको ढँकते हैं, आप नंगे रहते हैं। वे गाँवसे अकेले आये हैं, पेटकी ख़ातिर। बीबी दूर, बच्चे दूर, और तीन साल तक मशीनकी तरह काम करते-करते, उनका हाज़मा बिल्कुल बिगड़ गया है। दवा करानेको मँहगाई है। और कारख़ाना चल रहा है, बाहर ख़ुशियाँ मनानेका स्वाँग हो रहा है। सड़कके एक किनारे ही एक काछिन रहती है। उसका एक बेटा है। वह फ़ौजी कपड़ोंमें काज-बटन टाँकता है। एक क़मीज़के दो पैसे मिलते हैं।

और आज रातको बूढ़ी भगवतीने आँख फाड़ कर देखा और अस्वीकृतिसे सिर हिलाया। उसका विश्वास उसके हृदयकी अनुभूतिसे सशक्त नहीं था। सच ही उसने इतने बटन टाँके थे, वह जो फ़ौजी हैं, शायद बहुत से उसीके हाथके बनाये कपड़े पहने हैं। लेकिन वह आज भी अकेली है। अब कुछ दिन बटन लगना भी बंद हो जाएगा। लड़ाईके बाद क्या खायेंगे?

उसने निराशासे आकाशकी ओर देख कर परमात्माकी खोज की, किंतु बिचारा परमात्मा नहीं दिखा। उसी समय सिपाहीने रुक कर कहा—"ऐ बुढ़िया। दिये नहीं जलाये? सरकार

आदि काव्य

रामविलास शर्मा

काव्यमें वेदभी आ जाते हैं, फिर भी आदि काव्य वाल्मीकीय रामायण को ही कहा गया है।

इसका कारण यह हो सकता है कि वैदिक काव्यकी देवोपासनाके बदले यहाँ पहले-पहल मानव-चरित्रको काव्यका विषय बनाया गया है और इस मानवीय काव्यमें मनुष्यको देवताके सिंहासनपर नहीं बिठाया गया वरन् उसकी शक्ति, असमर्थता और वेदनाको बड़ी सहानुभूतिसे चित्रित किया गया है।

की भुखमरीमें ब्रिटेनकी जनताने उठायी थी, जिसको उठा कर ही फ्रांस स्वतंत्र हो स
जीवनका यह विषम द्वन्द्व कितना दुरूह है ! आजका यह पल कितना कठिन है; कितना उ
आज चारों ओर हाहाकार कर रहा है !

विजयका यह उल्लास भारतका अथाह विषाद है। इसमें शक्तिका वरदान नहीं, दुर
है। हिटलरका अंत साम्राज्यवादके प्रबल प्रतीकका अंत है। सिंह मर चुका है। दो बार
मार अपने आपको यदि गीदड़ ही सिंहका हंता समझ ले तो उससे बढ़ कर हास्यास्पद
नहीं। साम्राज्यवादकी मृत्यु पर साम्राज्यवाद आनंद मना रहा है। वह समझता है कि आज
युद्ध भी केवल दो राजाओंका अभिमान है, उन्माद मात्र है। एककी पराजयसे दूसरे
विजय का यह भ्रम केवल स्वार्थका बंधन है, इतिहास की असलियतको देखनेसे इंकार कर
है। किंतु जहाँ व्यक्ति और समाजका समन्वय है वहाँ आँखें मींच कर दुनियाको 'नहीं है'
कर निस्तार नहीं हो सकता।

यह विजय मनुष्यकी विजय है, जनसमाजकी विजय है, साम्राज्यवादकी नहीं
साम्राज्यवादकी वेश्याने आज दीप जलाये हैं। किन्तु वह भूल गयी है कि घरोंको उजाड़ने वा
वह पापिनी अब अधिक जीवित नहीं रह सकती। इतिहासका चरण कभी नहीं रुक सकता
वह उठता चला जा रहा है। विकासके इस क्रांतिपथ पर हर अवस्थासे मनुष्य मुक्त हो रहा
है। यह जनताकी विजय है। योरपकी जनता मुक्त हो रही है, क्योंकि अब वहाँ अत्याचारी
विरुद्ध एक मोर्चा है, एक शक्तिमय हुंकार है, जिसके सामने फिर वही क्रूर इतिहास सि
उठानेका साहस नहीं कर सकता।

चट्टान खड़ी है। समुद्रकी अनेक लहरें टकराकर बिखर चुकी हैं। केवल फेनोंसे बार
बार तीर ढँक जाता है। यह अंधकारकी लहरें ऐसे ही टकराती रहेंगी किंतु चट्टान कभी नहीं
गिरेगी, क्योंकि इस पर आकाश-दीप लटका है, क्योंकि इस पर एक महान प्रकाश-स्तंभ है। एक
एक बलिदान एक-एक ईंट है। अब मीनार छोटी नहीं है। हिंदुस्तानके चालीस करोड़ों पर जो
आँधी चल रही है, उसने भले ही उन्हें भूखा मार दिया हो, नग्न कर दिया हो, किंतु क्या
वह उसकी मनुष्यताको छीन सकी है ? सिर उठाकर जिन्होंने संसारका सिर झुका दिया है, कि
आज साम्राज्यकी झूठ मुर्देकी तरह सफेद होकर सड़ने लगी है।

●

चंगेजने अपनी तलवार कोषसे उठाली और तड़प कर प्रहार किया; किंतु पत्थर तो क्या
उसके काठ भी नहीं कट सका। उसकी भौंहें तन गयी। वह जिन्हें देखकर करोड़ों मनुष्य कां
उठते थे, जिसके इंगितमें देश लहरोंकी तरह उठते थे, गिरते थे—आज वह व्यर्थ हो गयी थी।
किंतु हृदय नहीं माना। उसने भीषण गर्जन किया और अपनी समस्त शक्तिसे फिर प्रहार किया।

किंतु तलवार झन्ना कर टूट गयी और चंगेज मूर्छित होकर वहीं गिर गया.......।

आधी रात बीत गयी। देखते ही देखते आकाशमें वह विराट V (वी) मिल कर क्षीण
होती हुई एक रेखा बन गयी और फिर अन्धकारमें लय हो गयी। तारे मद पड़ गये।

भोर काम

ान् बहूत् ! केवल महाभारतमें जिस अंतिम दृश्यसे पटाक्षेप होता है, वह भी ऐसा अन्धकारपूर्ण है ।

रामायणकी सबसे करुण घटना सीताका वनवास है । इसके आगे रामका वन-गमन फीका जाता है । रामके साथ लक्ष्मण और सीता भी गये थे और इनके साथ रहनेसे रामको योध्याकी याद बहुत न आती थी । लेकिन धोखेसे गर्भिणी सीताका वनमें त्याग ऐसी दय-विदारक घटना है जिससे रामके वनवासकी तुलना की ही नहीं जा सकती । मायणकी इसी घटनाको लेकर उत्तर राम-चरित और कुन्दमाला जैसे महानाटकोंकी रचना ी गई है । लेकिन सीताके त्यागमें जिस क्रूरताका आभास ' आदि-कविने दिया है, परवर्ती वि उसकी छाया भी नहीं छू सके । ' गोमतीके किनोर उनके दुःखसे बेहोश होकर गिर ड़नेमें जो स्वाभाविकता है, परवर्ती कवि अपने अलंकृत वर्णनोंमें नहीं पा सके । सीता एक ीर नारी हैं । रामके वनवासके समय उन्होंने बड़े दर्पसे कहा था—अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकंटकान् । वह कुशकंटकोंको रौंदती हुई रामके आगे चलनेका साहस रखती हैं । उनमें नारीकी दुर्बलताएँ, क्रोध और संदेहभी हैं । इसीलिये उन्होंने लक्ष्मणसे कटुवचन कहे थे । ससे उनकी मानवीयताही प्रकट होती है । रामकी कातर पुकार सुनकर भय और चिन्ताके एक असाधारण क्षणमें वह ऐसी बात कह बैठती है ।

> सुदुष्टस्त्वं वने राममेकमेकोऽनुगच्छसि ।
> मम हेतोःप्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेनवा ॥

इसके साथ वह अपना निश्चय भी प्रकट कर देती हैं कि वे भस्म हो जायेंगी लेकिन लक्ष्मणके हाथ न आयेंगी । अपनी इस दुर्बलतासे सीता पाठककी सहानुभूति नहीं खो देती, उनकी कटूक्ति नियतिका व्यंग्य बन कर उन्हींकी व्यथाको और तिक्त बनाती है जब लक्ष्मणके बदले रावण ही आकर उनका हरण करता है ।

रावणकी पराजय तक उन्होंने किसी तरह दिन काटे लेकिन उनके अपमान और दुःखके दिन तो अब आनेवाले थे । सीताके चरित्रमें शंका प्रकट करने वाले सबसे पहले स्वयं राम थे, न कि अयोध्याकी जनता । जब विभीषण सीताको लिवा कर लाये, तब रामने कहा—"राक्षस तुम्हें हर ले गया, यह दैवका किया हुआ अपमान था; उस अपमानको मनुष्य होकर मैंने दूर कर दिया ।" लेकिन भौंहें चढ़ा कर क्रोधसे तिरछे देखते हुए उन्होंने फिर कहा—"मैंने जो कुछ युद्ध जीतनेके लिये किया है, वह तुम्हारे लिये नहीं, वरन् अपने चरित्र और वंशकी कीर्ति की रक्षाके लिये । इस समय तुम संदिग्ध चरित्रवाली मुझे वैसी ही लगती हो जैसे नेत्र-रोगीको दिया लगता है । मुझे तुमसे कोई काम नहीं है; तुम्हारे लिये दसों दिशाएँ पड़ी हैं, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, जाओ । उच्च कुलमें पैदा होनेवाला व्यक्ति दूसरेके घरमें रहनेवाली स्त्रीको कैसे स्वीकार कर लेगा ! जिस यशके लिये मैंने यह सब किया, वह मुझे मिल गया है । तुम लक्ष्मण, भरत, सुग्रीव या विभीषण किसीके साथ भी रह सकती हो । तुम्हारा दिव्य रूप देखकर और अपने घरमें पाकर रावणने तुम्हें कभी क्षमा न किया होगा ।"

रामकी बातें सीता का ही नहीं लक्ष्मण, सुग्रीव आदिका भी घोर अपमान करती थीं । कहाँ लक्ष्मण की निःस्वार्थ तपस्या और कहाँ राम के ये वाक्य ! फिर सीताकी संचित आकांक्षा और उन पर यह अनुचित दुराग्रह ! यह अपमान भी वानरों और राक्षसोंके बीचमें हुआ था । तब मुहँ पर से आँसुओंको पोंछते हुए सीताने धीरे-धीरे कहा—"वीर ! तुम प्राकृत जनोंकी तरह मेरे अयोग्य वाक्य मुझे क्यों सुना रहे हो ? यदि विवश होने पर राक्षसने मेरा शरीर छू लिया, तो इसमें दैवका ही दोष है मेरा क्या अपराध ? जो मेरे वशमें है

तुलना कर सके। देवताके समान प्रभुओंको भी प्रिय पुत्रका कौन अकारण त्यागकर देगा ? राजा फेरसे बालक हो गये हैं, इनके चरित्रको जाननेवाला कौन व्यक्ति उनकी बात माननेको तैयार हो जायगा ?" उन्होंने भाईसे कहा—"लोग तुम्हारे वनवासकी बात जानें, इसके पहले ही मेरे साथ तुम शासनपर अधिकार करलो। धनुष लेकर मेरे साथ रहनेपर तुम्हारा कोई क्या बिगाड़ सकता है ? यदि कोई विरोध करेगा तो मैं तीक्ष्ण बाणोंसे अयोध्याको जनहीन कर दूँगा।" फिर उन्होंने **कौसल्या** से कहा—" मैं धनुषकी शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं अपने भाईसे प्रेम करता हूँ। यदि जलते हुए वनमें **राम** प्रवेश करेंगे तो आप मुझे पहले ही उस वनमें प्रविष्ट हुआ समझ लीजिये। देवि, आप मेरी शूरताको देखें; जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार छँट जाता है, वैसेही, मैं आपका दुख दूर करूँगा। कैकेयीमें आसक्त इस पिताका मैं नाश करूँगा जो बुढ़ापेमें फिर बच्चों जैसी बातें कर रहा है:—

हरिष्ये पितरं वृद्धम् कैकेय्यासक्तमानसम् ।
कृपणं च स्थितं बाल्ये वृद्धभावेन गर्हितम् ॥

यह चरम क्रोधका उदाहरण है। रामायणमें नाटकके सामाजिक नियम मानव-सुलभ सहृदयता के आड़े आते हैं; इनके विरोध और परस्पर संघर्षसे ही यह नाटक दुःखान्त बनता है। **लक्ष्मण** के विद्रोहमें नियमों के प्रति वही तिरस्कार और मानवीय सहानुभूतिका पक्षपात है।

रामायणके अनेक संवादों में व्यंग्य खूब निखरा हुआ है और उसका उपयोग इसी मानवीय सहानुभूतिको उभारनेके लिये हुआ है। बालि-वधके उपरान्त **तारा रामसे** कहती है जिस बाणसे आपने **बालिको** मारा है उसीसे मुझे भी मार डालिये और यदि आप समझें कि स्त्रीको मारना अनुचित है तो बालि और मेरी आत्माको एक जान कर अपना संशय दूर कर दीजिये।"

'जब **रामने** छिपकर **बालिको** मारा और उसके अनार्य होनेसे कोई पाप न हुआ, तब उसकी स्त्रीको ही मारनेमें क्या पाप है ? बालिकी मृत्युके बाद पाठककी सारी सहानुभूति **तारा** की ओर खिंच आती है।

वाल्मीकि प्रतिपक्षको बड़ा करके या उसके उचित रूप दिखानेमें कभी पीछे नहीं हटते। **बालि** और **सुग्रीव** के चित्रणमें उन्होंने **सुग्रीव** को बड़ा करके दिखानेका प्रयत्न नहीं किया। **सुग्रीव** एक तो छिपकर भाईकी हत्या करवाता है; फिर राज्य पाने पर भाईकी स्त्रीके साथ ऐसा विलासमें पड़ जाता है, कि उसके प्रति पाठकको तनिक भी सहानुभूति नहीं रह जाती। **लक्ष्मण** का क्रोध बिल्कुल उचित जान पड़ता है।

रावणके शयनागारका वर्णन करते हुए कविने लिखा है कि वह एक भी स्त्रीको उसकी इच्छाके विरुद्ध न लाया था। उसकी पत्नियाँ न पहले किसी की स्त्री रही थीं न उन्हें दूसरे पतिकी इच्छा थी। **हनुमान**ने सीताके और इन स्त्रियोंके पति प्रेमकी तुलना तक कर डाली। उन्होंने कहा—" जैसी ये रावणकी स्त्रियाँ हैं, वैसी ही यदि रामकी पत्नी भी है (अर्थात् रावण उनका सतीत्व नष्ट नहीं कर सका), तभी उसका कल्याण है।" जिस समय **हनुमान** शिंशुपाकी डाल पर बैठे थे, तभी धनुषबाण छेड़े हुए कामके समान **रावण** वहाँ उपस्थित हुआ। **हनुमान** स्वयं तेजस्वी थे; फिर भी **रावण** का तेज उन्हें असह्य हो उठा। उन्होंने अपनेको पत्तोंके पीछे छिपा लिया।

स तथाप्युग्रतेजाः सन्निर्धूतस्तस्य तेजसा ।
पत्र गुह्यान्तरे सक्तो हनुमान् संवृतोऽभवत् ॥

रावणके तेजका इससे बढ़ कर और बखान क्या हो सकता था ? वाल्मीकिकी उदारता और नाटकीय प्रतिभाका यह अकाट्य प्रमाण है।

यह उचित तुम्हारा है; शरीर पराधीन होनेसे मैं असहाय कर ही क्या सकती थी? जिस समय तुमने हनुमानको लंका भेजा था उसी समय तुमने मेरा त्याग क्यों न कर दिया? तुम मेरा चरित्र भूल गये; और यह भी भूल गये कि मैं जनककी लड़की हूँ और पृथ्वी मेरी माता है। बाल्यावस्थामें तुमने जो पाणिग्रहण किया था, उसे भी तुमने प्रमाण न माना। मेरी भक्ति, मेरा शील तुम सब कुछ भूल गये।" इस तरह कह कर सीताने लक्ष्मणसे चिता चुननेको कहा। लेकिन अग्निप्रमाण भी बहुत दिनों तक काम न आया।

एक बार सीता फिर रामके सामने आईं। वह वाल्मीकिके पीछे आँसू बहाती चल रही थीं और इस बार वाल्मीकिने उनकी पवित्रताके लिये साक्ष्य दिया और यह भी घोषित किया कि लव कुश रामचंद्र की ही सन्तान हैं। उनके आने पर सभामें "हलहला" शब्द हुआ और लोग राम और सीताको साधुवाद देने लगे। वाल्मीकिने सीताके निर्दोष होनेकी शपथ ली, लेकिन रामने कहा—"मुझे सीताके निर्दोष होनेमें विश्वास है लेकिन जनापवादके कारण मैंने उनका त्याग किया था।" इसका यही अर्थ था कि सीताको ग्रहण करनेका कोई उपाय नहीं है। और अब क्या वह अपमानकी सीमाओंको पारकर राम और जनतासे यह याचना करतीं कि उन्हें फिर ग्रहण कर लिया जाय? काषायवासिनी सीताने आँखें नीची किये हुए और मुँह फेरे हुए ही हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"यदि मैं रामको छोड़कर और किसीका मनमें भी चिन्तन नहीं करती हूँ तो धरती मुझे स्थान दे!" उनकी शपथके बाद पृथ्वीसे सिंहासन निकला और उसीमें बैठकर वह अन्तर्धान हो गईं।

इस चमत्कारी घटनाके पीछे नारीके उस दारुण अपमानकी गाथा है जो अभी तक समाप्त नहीं हुई। महान कवियोंके हृदयमें इस घटनासे संवेदना उत्पन्न हुई है और उन्होंने इसे रामायणकी मुख्य घटनाओंमें से मानकर उस पर नाटकादि रचे हैं। वाल्मीकिने सीता-वनवासकी महान क्रूरताका अनुभव किया था और इसलिये उसका वर्णन रामायणके करुणतम स्थलोंमें से है।

इस कहानीसे मिलती-जुलती राम-गमनके समय **कौसल्या** की व्यथा है।

कौसल्या इसीलिये दुखी नहीं है कि **राम** वन जा रहे हैं वरन् इसलिये भी कि पुत्रके रहनेपर सपत्नियोंके जिस अपमानको वह भूले हुए थीं, वह फिर उन्हें सहना पड़ेगा। इसमें **कैकेयी**का ही दोष न था; राजा **दशरथ** ही उनकी ओरसे उदासीन हो गये थे। **कौसल्या** को अपने वन्ध्या होनेके दिनोंकी याद आई। उन्हें लगा कि इस पुत्र वियोगसे तो वही दिन अच्छे थे जब पुत्र हुआ ही न था। उन्होंने **राम**को याद दिलाया कि जैसे पिता बड़े हैं वैसे वह भी हैं; इसलिये उनकी आज्ञा मानकर उन्हें वन न जाना चाहिये। परन्तु **राम** ने यह सब न माना और वन चल ही दिये। तब जैसे बछड़ा मारे जाने परभी गाय उससे मिलनेकी इच्छामें घरकी तरफ़ दौड़ती है उस तरह **कौसल्या राम** के रथके पीछे दौड़ीं।

प्रत्यागारमिवायान्ती सवत्सा वत्सकारणात्।
बद्धवत्सा यथा धेनु राममाताभ्यधावत॥

ऐसे स्थलोंके लिये सचमुच कहा जा सकता है कि शोकः श्लोकत्वमागतः।

करुणाके साथ क्रोधकी भी उच्च कोटिकी व्यंजना हुई है। **कौसल्या** का दुख देखकर **लक्ष्मण**का पितापर क्रोध, समुद्रकी दुष्टता देखकर **राम** के वाक्य, निकुंभिलामें यज्ञध्वंस होनेपर **विभीषण**के प्रति **मेघनाद** का उपालम्भ—ये सब इस महाकाव्यके स्मरणीय स्थल हैं। संवादोंमें ऐसी नाटकीयता महाभारत छोड़कर संस्कृतके और किसी काव्यमें (नाटकों समेत) नहीं है। **कौसल्या** को विलाप करती हुई देखकर **लक्ष्मण** ने कहा—"मुझेभी रामका इस तरह राज्य छोड़कर वन जाना अच्छा नहीं लगता। काम-पीड़ित होकर वृद्ध शक्तिहीन राजा इस तरह क्यों न कहे! मुझे तो लोक परलोकमें ऐसा कोई भी नहीं दिखाई देता जो इस दोषकी

एक स्थल और है जहाँ ऐसे ही संतुलनसे उन्होंने चरित्रकी विशेषता दिखाई है। राम के वनवासकी अवधिमें भरत उनकी पादुकाओंकी अर्चना किया करते हैं। वह त्याग और निःस्वार्थताके वे चरम उदाहरण हैं। राम और लक्ष्मण पर जब भी विपत्ति पड़ती है, तभी भरतके षड्यंत्रकी गंध उन्हें मिलती है। लेकिन जब अवधि पूर्ण हुई और भरत कठोर तपस्याके फलस्वरूप रामके दर्शन की बाट जोह रहे थे, तब अयोध्याके पास पहुँचकर रामने हनुमानसे कहा कि वह भरतके पास जायँ और रावण-वध आदि का वृत्तान्त कहकर उनके आनेकी सूचना दें और देखें कि भरतके मुँह पर कैसे भाव प्रकट होते हैं। बापदादोंका राज्य पाकर किसका मन विचलित नहीं हो जाता। कविने रामके हृदयमें यह शंका उत्पन्न करके भरतके त्यागमें चार चाँद लगा दिये हैं।

जैसी निपुणता और भाव-सम्बंधी लाघवता इन संवादोंमें देख पड़ती है, वैसी ही विलक्षणता इस महाकाव्यके वर्णनात्मक स्थलोंमें भी है। तमसाके किनारेसे लेकर जहाँ वाल्मीकि जिसे यश रख देनेको कहते हैं, रावणके शयनागार तक, जहाँ का सौंदर्य और वैभव वर्णनातीत है, कविने अपनी सजीव कल्पनाका समान रूपसे परिचय दिया है। उसकी उपमाएँ अनूठी हैं; वे वर्णनके बाद दो शब्दोंमें वे एक अनुभूतिको मानों संचित कर देते हैं। रावणके शयनागारके लिये लिखा है कि उसने हनुमानको माताके समान तृप्त किया।

रामायणके चित्रोंमें एक विराट और उदात्त भावना विद्यमान रहती है। उनमें एक विशेष प्रकारकी गरिमा और वैभव है। स्वाभाविकता और लाघवता—संसारको देखनेमें उनकी कुशलता और चतुरता तो है ही। लंकामें आग लगने पर वह लपटोंके लिये कहते हैं कि वे तो वे किंशुकके फूलों जैसी, कहीं शाल्मली के फूलों जैसी और कहीं कुंकुम जैसी लगती हैं। राम-रावण युद्धमें ऐसे बहुतसे चित्र देखनेको मिलते हैं। जिस समय लक्ष्मण ने विभीषण पर आती हुई रावण की शक्ति अपने बाणोंसे काट डाली, उस समय वह काञ्चनमालिनी शक्ति स्फुलिंग छोड़ती हुई आकाशसे उल्काके समान पृथ्वीपर गिरी। पुनः रावण की अमोघ शक्ति वासुकि की जीभके समान लक्ष्मण के हृदयमें घुस गई। इस तरह की उपमाएँ इस महाग्रंथ में भरी पड़ी हैं।

जीवनके प्रति कविका दृष्टिकोण नकारात्मक नहीं है। उसे भोग-प्रधान कहना अनुचित न होगा। जिन ऋष्यशृंगने पुत्रेष्टि यज्ञ करके दशरथ की पुत्रहीनताको दूर किया था, वे स्वयं शान्ता के पति थे और उनके पति होनेके पहले वेश्याओंके आकर्षणसे वन छोड़कर नगरकी ओर गये थे। राम और सीता की प्रेमक्रीड़ाओंके वर्णनमें कवि झिझक नहीं है। रावणके शयनागारके वर्णनमें तो सौंदर्य और विलासिताका नग्न रूप मिलता है। [illegible] विभिन्न मुद्राओंके वर्णनमें खजुराहोकी नग्न प्रस्तर मूर्तियोंकी याद आ जाती है। भरत सेना लेकर भरद्वाज मुनिके आश्रम पहुँचते हैं तो उनके प्रभावसे सैनिकोंके भोजन, पान और रसिक प्रबन्ध हो जाता है। सीता की खोज करते हुए वानरगण जब [illegible] प्रवेश करते हैं, तब वहाँ भी [illegible] समान वे एक [illegible] स्वर्गमें विहार करने लगते हैं और कुछके मनमें यह भी आता है कि यहीं रहना चाहिये, सीता की खोज करना व्यर्थ है। [illegible] साथ लक्ष्मण और हनुमान के चरित्र भी आदर्श हैं। अपनी साधना और [illegible] वे [illegible] हैं [illegible] अपने ढंगके तो ही हैं। [illegible] [illegible] हो [illegible] है। हनुमान [illegible] की [illegible] रावणकी [illegible] देखते हैं [illegible] है कि ऐसा [illegible] अनुचित है। लेकिन [illegible] ही है, [illegible] और दूसरा [illegible] नहीं है। लक्ष्मणने [illegible] [illegible] है क्योंकि [illegible] [illegible] [illegible] हुई [illegible] नहीं [illegible] [illegible] सीताने

परवर्ती कवियोंने कथाको और [illegible] किया है, [illegible] और [illegible]
[illegible] और [illegible] भी कही है। लेकिन वे मानव-हृदयके [illegible]
नहीं देते जितना आदिकवि, और इन दोनोंका अन्तर स्फुट और [illegible] है।
कवियोंके सामने अद्भुत प्रश्न रहते हैं, मानव हृदय [illegible] है; वाल्मीकि [illegible]
अस्तित्व ही नहीं है। क्योंकि, नायकमें अमुक गुण होने चाहिये, और [illegible]
वर्णन होना चाहिये, यह सोचकर रामायण नहीं लिखी। वह कुछ [illegible] है, [illegible]
नाटकीय परिस्थितियोंको खूब पहचानते हैं, मानव हृदयकी करुणा और रोने [illegible]
है, इसलिये इसकी कथा जनसाधारणके हृदयको स्पर्श करती है। इसमें कोई सन्देह नहीं
उन्होंने देव-कल्पकी उपमि इस मानव-कल्पकी रचना की है। रामने जो [illegible]
कहा है, देखने जो अपमान किया था, उसका मनुष्य होकर मैंने प्रतिकार किया है। राम
आदर्श चरित्र है और इस आदर्शका मूलमंत्र है, सामाजिक विधानकी रक्षा। लेकिन
सामाजिक विधान ऐसा यांत्रिक हो चला था कि मनुष्यकी कोमल भावनाओंसे उसकी [illegible]
होती थी। कविकी पूर्ण सहानुभूति इन कोमल भावनाओंके साथ थी यद्यपि तर्कबुद्धि उन्हें [illegible]
ओर खींचती है। यह संघर्ष ही रामायणकी नाटकीयताका मुख्य कारण है और इसीसे
काव्यमें करुण और उदात्त भावोंकी सृष्टि होती है।

नैतिकताकी कसौटी पर **राम सीताको** वन भेज देते हैं और इसी नैतिक
कारण **राम** स्वयं वन जाते हैं। लेकिन कविकी सहानुभूति रोती हुई कौसल्या
साथ है या वृद्ध कामातुर **दशरथ**की प्रतिज्ञाके साथ; वह अपवादके भयसे ग
सीताके वन जानेसे संतुष्ट होते या **रामके** साथ उनके अयोध्यामें रहनेसे,—इसमें
संदेह हो सकता है? उनकी यह सहानुभूति ही उनकी महत्ता का कारण है। उनका
इसी कारणका एक अंग है। **लक्ष्मण** क्रोधसे पागल होकर पिताका वध करनेको उद्यत हो
इसीलिये कि **कौसल्या** का दुख उनसे देखा नहीं जाता। अपनी इस मौलिक भावनाके बल
ही रामायणका रचनाकार उस पर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ गया है। बहुतसे
प्रक्षिप्तसे लगते हैं और होंगे भी, लेकिन रामायणके सभी महत्वपूर्ण स्थलोंमें हम एक ही
कविकी लेखनीका चमत्कार देख सकते हैं। जिस कविने क्रौञ्चके दुखसे पीड़ित
मा निषाद प्रतिष्ठां त्वं आदि वाक्य कहे थे, वही रामके मुँहसे कहला सकता
दैवसम्पादितो दोषो मानुषेण मया जितः।

वाल्मीकीय रामायण आदि काव्य हो चाहे न हो, वह ऐसा काव्य अवश्य है जिसे
अपनी काव्य-संस्कृतिका आदि-स्रोत माननेमें गर्वका अनुभव करेंगे। परवर्ती कवियोंने
अंशोंको लेकर जिस प्रकार काव्य-रचना की है, उससे उसके आदि काव्य होनेकी भ
और दृढ़ होती है।

परवर्ती कवियोंने भाषाको और संस्कृत किया है, उपमाओंमें और [illegible] उनकी नफ़ासत और रसानुभूतिमें और बारीकी आ गयी है। लेकिन वे मानव-[illegible] नहीं पैठे जितना आदि-कवि, और इन दोनोंका अन्तर स्पष्ट और [illegible] कवियोंके सामने लक्षण ग्रन्थ पहले हैं, मानव हृदय बादको है; वाल्मीकिके लिये ल[illegible] अस्तित्व ही नहीं है। उन्होंने, नायकमें अमुक गुण होने चाहिये, और काव्यमें अमुक [illegible] वर्णन होना चाहिये, यह सोचकर रामायण नहीं लिखी। वह कुशल कलाकार हैं, उन्हें नाटकीय परिस्थितियोंको खूब पहचानते हैं, मानव हृदयकी वेदना और रोषसे उन्हें [illegible] है, इसलिये उनकी कथा जनसाधारणके हृदयको स्पर्श करती है। इसमें कोई सन्देह नहीं उन्होंने देव-काव्यकी स्पर्धामें इस मानव-काव्यकी रचना की है। रामने बड़े गर्वसे [illegible] कहा है, दैवने जो अपमान किया था, उसका मनुष्य होकर मैंने प्रतिकार किया है। [illegible] आदर्श चरित्र है और इस आदर्शका मूलमंत्र है, सामाजिक विधानकी रक्षा। लेकिन सामाजिक विधान ऐसा यांत्रिक हो चला था कि मनुष्यकी कोमल भावनाओंसे उसकी मुठ[illegible] होती थी। कविकी पूर्ण सहानुभूति इन कोमल भावनाओंके साथ थी यद्यपि तर्कबुद्धि उन्हें [illegible] ओर खींचती है। यह संघर्ष ही रामायणकी नाटकीयताका मुख्य कारण है और इसीसे [illegible] काव्यमें करुण और उदात्त भावोंकी सृष्टि होती है।

नैतिकताकी कसौटी पर **राम सीताको** वन भेज देते हैं और इसी नैतिक[illegible] कारण **राम** स्वयं वन जाते हैं। लेकिन कविकी सहानुभूति रोती हुई कौसल्या[illegible] साथ है या वृद्ध कामातुर **दशरथकी** प्रतिज्ञाके साथ; वह अपवादके भयसे गर्भिणी **सीताके** वन जानेसे संतुष्ट होते या **रामके** साथ उनके अयोध्यामें रहनेसे,—इसमें [illegible] संदेह हो सकता है? उनकी यह सहानुभूतिही उनकी महत्ता का कारण है। उनका [illegible] इसी कारणका एक अंग है। **लक्ष्मण** क्रोधसे पागल होकर पिताका वध करनेको उद्यत होते [illegible] इसीलिये कि **कौसल्या** का दुख उनसे देखा नहीं जाता। अपनी इस मौलिक भावनाके बल [illegible] ही रामायणका रचनाकार उस पर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ गया है। बहुतसे [illegible] प्रक्षिप्तसे लगते हैं और होंगे भी, लेकिन रामायणके सभी महत्वपूर्ण स्थलोंमें हम एक ही कु[illegible] कविकी लेखनीका चमत्कार देख सकते हैं। जिस कविने क्रौञ्चके दुखसे पीड़ित हो[illegible] **मा निषाद प्रतिष्ठां त्वं** आदि वाक्य कहे थे, वही रामके मुँहसे
दैवसम्पादितो दोषो मानुषेण मया जितः।

वाल्मीकीय रामायण आदि काव्य हो चाहे न हो,
अपनी काव्य-संस्कृतिका आदि-स्रोत माननेमें गर्वका
अंशोंको लेकर जिस प्रकार काव्य-रचना की है,
और दृढ़ होती है।

उर्दू साहित्यमें प्रगतिशील आन्दोलन

सज्जाद ज़हीर

यह समझना भ्रम होगा कि उर्दू साहित्यमें प्रगतिशील प्रवृत्तियोंका सारा श्रेय प्रगति
लेखक संघको है। संघने कभी यह दावा नहीं किया, क्योंकि ऐसा करनेका कोई अर्थ न
अगर हम प्रगतिशीलताके विशालतम पक्ष पर दृष्टि डालें तो यह कहना गलत नहीं होग
सम्पूर्ण श्रेष्ठ साहित्य प्रगतिशील साहित्य भी है; और इस प्रकार हर युगमें प्रगतिशील सा
का निर्माण होता रहा है। फिर भी परिवर्तित परिस्थितियाँ मनुष्योंके जीवन, अतः उ
साहित्यमें भी, परिवर्तनको जन्म देती हैं।

- उर्दूमें आधुनिक प्रगतिशीलताका आरम्भ कवितामें 'हाली', 'शिबली', 'अकब
'इक़बाल' आदि और गद्यमें सर सैयद अहमद, नज़ीर अहमद, 'हाली', शिबली
अबुलकलाम आज़ाद आदिने किया। कहानीमें मुं. प्रेमचन्दने न केवल उर्दूमें प्रगतिशील कहानि
का आरम्भ किया बल्कि अभीतक हमारी भाषामें कोई दूसरा प्रगतिशील कहानी-लेखक उन
आगे नहीं बढ़ सका है।

बहुधा लोग प्रश्न करते हैं कि जब हर युगमें प्रगतिशील साहित्यका निर्माण होता र
और जब 'हाली', शिबली, इक़बाल भी प्रगतिशील हैं तो फिर आख़िर प्रगतिशील लेख
संघ बनानेकी आवश्यकता ही क्या है?

यह प्रश्न ऐसा है कि जब संसारमें अनादि कालसे लेकर आज तक फू
खिलते रहे हैं तो बाग़ लगानेकी क्या आवश्यकता है? इस संघकी आवश्य
कता इसी कारणसे पैदा हुई जिस कारणसे अन्य समस्त संघोंकी आवश्यकता
होती है। यानी यह, कि व्यक्ति सामूहिक रूपसे साहित्यिक समस्याओं पर
वाद-विवाद करें, व्यक्ति समूहकी आवश्यकताओंको समझें, सामाजिक परि-
स्थितियों पर विचार करें और इस प्रकार अपना संयुक्त ध्येय बनाएँ और
उसके अनुरूप कार्य करें। क्या यह सामूहिक प्रयत्न व्यक्तिके प्रयाससे उत्तम
न होगा?

मुं. प्रेमचन्दने प्रगतिशील लेखक संघके प्रथम अधिवेशनके अवसर पर सभापतिके आसनसे
इस सामूहिक प्रयत्नका आह्वान किया था।

उन सम्मेलनोंके अतिरिक्त जो समय-समय पर लखनऊ, इलाहाबाद, लाहौर और दिल्लीमें
हुए जिनमें एक की अध्यक्षता मौ. अब्दुल हक़ साहबने स्वीकार की, सन् १९३६ ई० के प्रगति-
शील आन्दोलनसे प्रभावित होकर कई पत्रकार और युवक कवि सामने आये। कई वह साहित्यिक
भी, जो अपने लिये उर्दू साहित्यमें पहलेसे स्थान बना चुके थे, इस आन्दोलनके साथ हो गये।

कि वर्तमान युगमें उन्हें आत्मोन्नति, बौद्धिक सजगता और शारीरिक स्वास्थ्यकी मंज़िल तक ले जा सकती है।

स्पष्ट है कि प्रगतिशील साहित्यिक अच्छे भी हैं और बुरे भी, सफल भी, असफल भी। प्रगतिशीलता साहित्यमें हो या साधारणतया जीवनमें, वह कोई स्थिर वस्तु-कल्पना नहीं, यद्यपि एक अस्थिर गतिमय चीज़ है। अस्तु ऐसे भी साहित्यिक हैं जो किसी कालमें प्रगतिशील थे, लेकिन अब प्रगतिके विरोधी हैं। ऐसे भी साहित्यिक हैं जिनको बौद्धिक चेतना उन्हें अपने पुराने प्रतिक्रियावादसे हटाकर प्रगतिशीलताकी ओर खींचे ला रही है। इस संघर्षकी अभिव्यक्ति उनकी रचनाओंमें भी होती है, जबकि उनके पुराणपन्थी विचारोंकी तहके नीचेसे जीवनका प्रकाश रह-रह कर झलक पड़ता है। ऐसे भी नवयुवक साहित्यिक हैं जो घोर विकट परिस्थितियों और निराशाओंकी उस भयानक आप-बीतीसे तंग आकर जोकि हमारे निचले मध्य-वर्गके भाग्यमें आगयी है, हर अच्छी-बुरी चीज़के विरोधके लिये अंधाधुन्ध अड़ जाते हैं। वह केवल विनाशसे आकृष्ट होते हैं। लेकिन धीरे-धीरे अनुभव और ज्ञानका प्रकाश प्राप्त करके वह प्रगतिशीलताका सच्चा अर्थ समझने लगते और अनुभव करते हैं कि मुक्ति-पथ विनाश और निर्माण दोनोंका आह्वान करता है और वही विरोध अच्छा और स्वास्थ्यप्रद है जो अपने उच्चादर्शों को प्राप्त करने के उपक्रम में किया जाय और वास्तव में बुराई के विरोध और भलाई के पक्ष में हो। चूँकि प्रगतिशील साहित्यिक इन विभिन्न श्रेणियों में पाये जाते हैं, बल्कि कभी-कभी तो यह होता है कि एक ही साहित्यिक की रचनाओं में इन विभिन्न भावनाओंकी अभिव्यक्ति होती है, इसलिये यह बताना कठिन हो जाता है कि अमुक साहित्यिक प्रगतिशील है या नहीं, और अगर है भी तो वह प्रगतिशीलता की किस मंज़िल और किस श्रेणी में है। इसलिये अगर हम उसकी किसी एक कविता, कहानी, उपन्यास या निबन्ध के बारे में अपना मत स्थिर करें तो उसकी बुराइयोंको उस साहित्यिक के सारे प्रयासों का निचोड़ न समझें और झटपट उसे अपने क्रोध का आधार बनाकर सारे प्रगतिशील आन्दोलन पर व्यंग करके आलोचना-कला का अप-मान, और अपने दायित्व-धर्म को लज्जित, न करें।

आप यह हरगिज़ मत ख़याल फ़रमाइयेगा कि यह सब कुछ कहकर मैं प्रगतिशील लेखकों की शिथिलताओं और कमज़ोरियों पर पर्दा डालना चाहता हूँ। प्रगतिशील आलोचक बिना किसी रू-रिआयतके स्वयं प्रगतिशील साहित्यकी कम-ज़ोरियों को प्रकट करके इस आन्दोलनको और संगठित करने का प्रयत्न करते रहे हैं। उन्होंने प्रगतिशील साहित्यिकोंसे माँग की है कि वह कला पक्षमें अपनी रचना को ठोस बनानेका बराबर प्रयास करते रहें। ज़बानी जमा-ख़र्च ही नहीं बल्कि अपने जीवन और कर्मसे भी प्रगतिशीलता का प्रमाण देकर स्वाधीन वृत्ति, सहयोग, प्रेम और उत्सर्ग का उदाहरण प्रस्तुत करें; अपने ज्ञान का बराबर प्रसार करते रहें; अपनी प्राचीन साहित्यिक व सांस्कृतिक सम्पत्तिका आदर करें और उससे पूरी तरह काम उठाएँ; देश के स्वतन्त्रता-आन्दोलनमें सम्बंध [illegible]; जनताके सुख दुखमें भाग लें; जनतन्त्रवादका दामन कभी न छोड़ें; कठिन परिस्थितिमें भी अपने राष्ट्र पर विश्वास और भरोसा रखें, निराशा [illegible] अपने हृदयमें स्थान न दें; घटनाओं तथा परिस्थितियोंके ऊपरी [illegible] नीचे उनकी आन्तरिक अवस्था, उनका वास्तविक रूप जानें और प्रयत्न करें, अर्थात्, इस प्रकार जीवनके आदि स्रोतों तक पहुँचें, स्वयं [illegible] हों और अपने राष्ट्रको आध्यात्मिक तुला तोल करके समर्थ

[illegible]

तो वह अपने राष्ट्रकी ऐसी भावनाओंको जगाना चाहता है जिससे उन्नतर मानव-भावनाओंकी कल्पना नहीं की जा सकती। और सरदार जाफ़री इन भयानक परिस्थितियोंमें भी दुख और निराशाको अपने पास नहीं फटकने देता, बल्कि अपने राष्ट्रपर भरोसा करके यह संदेश देता है कि—

> मुत्तहिद होकर१ उठो, जिस तरह दरियामें उबाल!
> मुत्तहिद होकर बढ़ो जिस तरह सहरामें ग़िज़ाल२!
> मुत्तहिद होकर उड़ो जिस तरह शाएरका ख़याल!
> मुत्तहिद होकर चलो मानिन्दे-बादे-बरशिगाल३!
> फ़िर बहार आजाय, शाख़े-आरज़ू४ फलने लगे!
> खेतियां शादाब५ हो जायें, हवा चलने लगे!

तो वर्तमान परिस्थितिमें "ला तहज़न्! "६ की इससे सुन्दर टीका क्या होसकती है?

प्रगतिशील साहित्य पर नुक़ताचीनी करनेवाले कुछ सज्जन कहते हैं कि यह तमाम बातें राजनीतिक हैं, या यह कि यह सब कुछ केवल थोड़ेसे राजनीतिक विचारोंका प्रोपेगैंडा है, इसे साहित्य नहीं कहा सकता। 'साहित्यके लिये साहित्य' और 'जीवनके लिये साहित्य' का विवाद पुराना है और इस समय मैं उसमें उलझना नहीं चाहता। मैं आपसे केवल यह निवेदन करूँगा कि जो सज्जन इस प्रकारके मौलिक आक्षेप करते हैं उन्हें हाली और इक़बालको भी कवि माननेसे इनकार कर देना चाहिये, इसलिये कि वह भी स्पष्ट रूपसे अपने सामाजिक-सांस्कृतिक विचारोंका प्रचार करते थे।

फिर क्या यह सही है कि प्रगतिशील साहित्यिक अश्लील रचना करते हैं? अश्लील रचना क्या है? उस रचनाको अश्लील कहा जा सकता है जो मनुष्योंकी यौन इच्छाओंको इस बुरी तरह उभाड़े कि नैतिक दृष्टिसे व्यक्तियों और समाज दोनोंके लिये हानिकर हो। अब अगर हम प्रगतिशील साहित्यिकोंकी कविता और कहानी-कलाको सामूहिक रूपसे जाँचते हैं तो वास्तविकता बिलकुल इसके विरुद्ध है। न केवल यह कि अश्लील रचना प्रगतिशील लेखकोंका कभी ध्येय था और न अब है, बल्कि यह कि उन्होंने तो विशेष रूपसे समाजकी उन नैतिक कमज़ोरियों और पतित अवस्थाओंकी पड़ताल की जिनकी ओरसे हमारे अधिकांश साहित्यिक आँख चुराते थे। मैं आपसे निवेदन करूँगा कि जब आप किसी भी साहित्यिक गति विधियोंकी जाँच करें तो उसकी रचनओं पर सामूहिक रूपसे दृष्टि डालिये। जब आप हज़रत मीर तक़ी मीर के बारेमें अपना मत स्थिर करते हैं, तो यह तो नहीं करते कि उनके सबसे ख़राब और सबसे कमज़ोर पदोंका चयन करके घोषणा करदें कि मीर अश्लील रचना करते थे, या यह कि वह अच्छे कवि न थे।

हम प्रगतिशील लेखकोंसे यथार्थ चित्रणकी माँग करते हैं, लेकिन यथार्थ चित्रणके कदापि यह अर्थ नहीं कि प्रत्येक वास्तविकताको ज्यों का त्यों हू ब हू चित्रित कर दिया जाय। प्रगतिशील यथार्थ चित्रणका अर्थ यह है कि अनेक और विभिन्न यथार्थ तत्वोंमेंसे उन तत्वोंका चयन किया जाय जो व्यक्तियों और समाजके लिये अपेक्षित: अधिक महत्व रखते हैं, और फिर इनको इस प्रकार सम्मुख लाना कि इनसे वास्ता पड़ने पर मनुष्य स्वाधीनता और नैतिक उत्थानके उस राजमार्ग पर और बढ़ने के लिये तैयार होजाय जो

---

१. एक होकर २. जंगलमें हिरनोंका झुंड ३. घनघोर बादलोंको लानेवाली हवा ४. आशाकी टहनी ५. हरी-भरी ६. 'डरो मत!' (क़ुरान)

कि वर्तमान युगमें उन्हें आत्मोन्नति, बौद्धिक सजगता और शारीरिक स्वास्थ्यकी मंज़िल तक ले जा सकती है।

स्पष्ट है कि प्रगतिशील साहित्यिक अच्छे भी हैं और बुरे भी, सफल भी, असफल भी। प्रगतिशीलता साहित्यमें हो या साधारणतया जीवनमें, वह कोई स्थिर वस्तु-कल्पना नहीं, अपितु एक अस्थिर गतिमय चीज़ है। अस्तु ऐसे भी साहित्यिक हैं जो किसी कालमें प्रगतिशील थे, लेकिन अब प्रगतिके विरोधी हैं। ऐसे भी साहित्यिक हैं जिनकी बौद्धिक चेतना उन्हें अपने पुराने प्रतिक्रियावादसे हटाकर प्रगतिशीलताकी ओर खींचे ला रही है। इस संघर्षकी अभिव्यक्ति उनकी रचनाओंमें भी होती है, जबकि उनके पुराणपन्थी विचारोंकी तहके नीचेसे जीवनका प्रकाश रह-रह कर झलक पड़ता है। ऐसे भी नवयुवक साहित्यिक हैं जो घोर विकट परिस्थितियों और निराशाओंकी उस भयानक आप-बीतीसे तंग आकर जोकि हमारे निचले मध्य-वर्गके भाग्यमें आयी है, हर अच्छी-बुरी चीज़के विरोधके लिये अंधाधुन्ध अड़ जाते हैं। वह केवल विनाशसे आकृष्ट होते हैं। लेकिन धीरे-धीरे अनुभव और ज्ञानका प्रकाश प्राप्त करके वह प्रगतिशीलताका सच्चा अर्थ समझने लगते और अनुभव करते हैं कि मुक्ति-पथ विनाश और निर्माण दोनोंका आह्वान करता है और वही विरोध अच्छा और स्वास्थ्यप्रद है जो अपने उपादानों को प्राप्त करने के उपक्रम में किया जाय और वास्तव में बुराई के विरोध और भलाई के पक्ष में हो। चूँकि प्रगतिशील साहित्यिक इन विभिन्न श्रेणियों में पाये जाते हैं, बल्कि कभी-कभी तो यह होता है कि एक ही साहित्यिक की रचनाओं में इन विभिन्न भावनाओंकी अभिव्यक्ति होती है, इसलिये यह बताना कठिन हो जाता है कि अमुक साहित्यिक प्रगतिशील है या नहीं, और अगर है भी तो वह प्रगतिशीलता की किस मंज़िल और किस श्रेणी में है। इसलिये अगर हम उसकी किसी एक कविता, कहानी, उपन्यास या निबन्ध के बारे में अपना मत स्थिर करें तो उसकी बुराइयोंको उस साहित्यिक के सारे प्रयासों का निचोड़ न समझें और झटपट उसे अपने रोष का आधार बनाकर सारे प्रगतिशील आन्दोलन पर व्यंग करके आलोचना-कला का अप-मान, और अपने दायित्व-धर्म को कलंकित, न करें।

आप यह हरगिज़ मत ख़याल फ़रमाइयेगा कि यह सब कुछ कहकर मैं प्रगतिशील लेखकों की शिथिलताओं और कमज़ोरियों पर पर्दा डालना चाहता हूँ। प्रगतिशील आलोचक बिना किसी रू-रियायतके स्वयं प्रगतिशील साहित्यकी कम-ज़ोरियों को प्रकट करके इस आन्दोलनको और संगठित करने का प्रयत्न करते रहे हैं। उन्होंने प्रगतिशील साहित्यिकोंसे माँग की है कि वह कला पक्षमें अपनी रचना को ठोस बनानेका बराबर प्रयास करते रहें। [illegible] जीवन और कर्मोंमें भी प्रगतिशीलता का प्रमाण देकर [illegible], प्रेम और [illegible] का उदाहरण प्रस्तुत करें; अपने [illegible] करते रहें, अपनी [illegible] साहित्यिक व सांस्कृतिक [illegible] और उससे पूरी तरह काम करें; देश के [illegible] [illegible] मर्दों ने [illegible] [illegible] पर [illegible] और [illegible] किया, [illegible]

महानतम शक्तियोंको उभारें, उसकी आत्माको समुन्नत करें और उसके घ
गढ़ दृढ़ता और साहससे निर्माण करें।

अब रहा यह प्रश्न कि प्रगतिशील लेखक संघके द्वारा साम्यवाद फैलाया जाता है,
नहीं है। इस संस्थाके जेनरल सेक्रेटरी होनेके नाते मैं आपसे सूचनाके रूपमें यह नि
चाहता हूँ कि इस संघके सदस्यों और हमदर्दोंकी बहुत बड़ी संख्या ऐसे लोगोंकी है जो
आन्दोलनसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते। यह सही है कि कुछ कम्युनिस्ट इस संघमें
किन्तु सामूहिक रूपसे उनकी संख्या पाँच प्रति शत ही होगी। वास्तविक स्थिति
बहुतसे प्रगतिशील लेखक ऐसी चीजें लिखते हैं जिनपर साम्यवादी लेखक अपने
कोणसे आक्षेप करते हैं। संघमें हर धर्म, जाति और पेशेके वह तमाम साहित्यिक
या हो सकते हैं जो इसके उन ध्येयोंको स्वीकार करलें जिनका उल्लेख संघके घोष
गया है।

एक और प्रश्न अभियोग रूपमें उठाया जाता है। यह प्रश्न है मुक्त और अतु
कविताओंके सम्बन्धमें, यह प्रश्न वास्तवमें प्रगतिशीलताकी बहसके बाहर है। अधिकां
लेखक छन्द और तुकका बन्धन स्वीकार करके पद-रचना करते हैं। कुछ इनमें पे
कुछ कविताएँ छन्दोबद्ध, किन्तु अतुकान्त, लिखी हैं। कई ऐसे प्रगतिशील क
अतुकान्त छन्दको पसन्द नहीं करते। फिर इस मुक्त और अतुकान्त छन्दके बच
प्रगतिशीलोंके सर क्यों थोपा जाता है?

मैं प्रगतिशील साहित्यके आलोचकोंकी सेवामें निवेदन करना चाहता हूँ
गम्भीर साहित्यिक आलोचनाके नहीं हैं। अगर आपको वास्तवमें प्रगतिशील साहि
-और मैं स्वयं स्वीकार करता हूँ कि प्रत्येक नये साहित्यिक रुझानकी तरह
वापन और खुरदरापन है, तो हमें और आपको अपनी-अपनी प्यारी भाव
प्रसारके लिये सर जोड़ कर बैठना और सहयोगी मित्रोंकी भावनासे विचार-
हिये, एक दूसरेकी सत्यनिष्ठा पर भरोसा करना चाहिये और देशके इस मह
न्दोलनको जो आठ सालमें इतनी तेजीसे सब ओर फैल गया है, इस प्रकार
ारना चाहिये कि यह हमारे राष्ट्र-जीवनके कला-पक्षको पहलेसे भी अधिक
दर बना सके।

तीन कविताएँ

केदारनाथ अग्रवाल

युग की गंगा

१

युग की गंगा
पाषाणों पर दौड़ेगी ही;
लम्बी—ऊँची,
पथ को रोके
चट्टानों को तोड़ेगी ही!

२

युग की गंगा
सब प्राचीन डुबायेगी ही;
नयी बस्तियाँ,
नये निकेतन,
नव संसार बसायेगी ही!

३

युग की गंगा
अंधकार को भेदेगी ही;
गुहा-गर्त से
बाहर आके,
सूर्योदय से खेलेगी ही!

४

युग की गंगा
सूखी खेती सींचेगी ही;
भूखी, प्यासी,
दुर्बल, विकल,
धरती को हरियायेगी ही!

५

युग की गंगा
[illegible] [illegible] ही,
दुर्दम हो,
दारुण बल से,
[illegible] को [illegible] ही!

पैतृक सम्पत्ति

जब बाप मरा तब यह पाया
भूखे किसान के बेटे ने :
घर का मलवा, टूटी खटिया;
कुछ हाथ भूमि—वह भी परती!
चमरौधे जूते का तल्ला,
छोटी टूटी बुढ़िया औंगी;
दरकी गोरसी, बहता हुक्का,
लोहे की पत्ती का चिमटा !
कंचन-सुमेरु का प्रतियोगी
कूड़े का पर्वत द्वारे का;
बनिया के रुपयों का कर्ज़ा
जो नहीं चुकाने पर चुकता !
दीमक, गोजर, मच्छर, माटा :
ऐसे हज़ार सब सहवासी;
बस, यही नहीं; जो भूख मिली,
सौगुनी बाप से अधिक मिली !!
अब पेट खलाये फिरता है !
चौड़ा मुँह बाये फिरता है !!
वह क्या जाने आज़ादी क्या !
आज़ाद देश की बातें क्या !!

गाँव में

उसी पुरातन चक्की का
कर्कश मोटा स्वर,
अन्धकार के आर्तनाद-सा
सुन पड़ता है।
गाय, बैल, भेड़ों, बकरी
पशुओं के दल में,
मूर्ख मनुष्यों का समाज
खोया रहता है।
सड़े धूर की, गोबर की,
बदबू से दब कर,
महक ज़िन्दगी के गुलाब की
मर जाती है।
रार, क्रोध, तकरार, बैर से,
दुख से कातर,
आज ग्राम का दुर्बल
प्राणी अभागी है'!

पैतृक सम्पत्ति

जब बाप मरा तब यह पाया
भूखे किसान के बेटे ने :
घर का मलवा, टूटी खटिया:
कुछ हाथ भूमि—वह भी परती!
चमरौधे जूते का तल्ला,
छोटी टूटी बुढ़िया औगी;
दरकी गोरसी, बहता हुक्का,
लोहे की पत्ती का चिमटा !
कंचन-सुमेरु का प्रतियोगी
कूड़े का पर्वत द्वारे का;
बनिया के रुपयों का कर्ज़ा
जो नहीं चुकाने पर चुकता !
दीमक, गोजर, मच्छर, माटा :
ऐसे हज़ार सब सहवासी;
बस, यही नहीं; जो भूख मिली,
सौगुनी बाप से अधिक मिली !!
अब पेट खलाये फिरता है !
चौड़ा मुँह बाये फिरता है !!
वह क्या जाने आज़ादी क्या !
आज़ाद देश की बातें क्या !!

गाँव में

उसी पुरातन चक्की का
कर्कश मोटा स्वर,
अन्धकार के आर्तनाद-सा
सुन पड़ता है।
गाय, बैल, भैंसें, बकरी
पशुओं के दल में,
मूर्ख मनुष्यों का समाज
सोया रहता है।
सड़े धूर की, गोबर की,
बदबू से दब
महक ज़िन्दगी के गुलाब
मर जाते हैं।
रार, क्रोध, मत्सरता, द्वेष के
दुख में कातर,
आज ग्राम का दुर्बल

कैप्टन रशीदकी चाय ठंडी हो गयी। उनके [illegible]
को उसने एक विचित्र [illegible], अचूक, [illegible] और मुड़े-तुड़े [illegible]
कुछ ऐसी चीज हो गयी थी मानो अपने [illegible] किसीको कुछ [illegible] होने न हो। [illegible]
शायद, [illegible] दूसरोंको मूर्ख समझकर, वे एक विचित्र ढंगसे मुस्करा देते [illegible]
ओठ [illegible] लेते थे।

कुछ दिन बेगम रशीद अपने पतिको प्यालेमें चुस्की लेते और सूखे [illegible]
खाला के दामाद और अपनी सहेलियोंकी बहिनके पतिको अपनी नयी स्कीम के
प्रार्थना पर उनके पतिने वे माँगें जो यद्यपि उन्हें दे दी थी, उनपर उसे कोई गर्व न
कैप्टन रशीदने पहले-पहल जब वर्दी पहनी थी तो उनके दोनों जेठ उन्हें देखकर हँस
थे। बड़े जेठ एक विचित्र व्यंगभरी मुस्कानसे कहा करते, "भई, कैसे-कैसे जवाँमर्द
भर्ती हो रहे हैं आजकल!" और छोटे उन्हें देखते ही यह शेर गुनगुनाना शुरू कर देते:

तस्वीर मेरी देखकर कहने लगा वह शोख
यह कारटून अच्छा है अखबारके लिए!*

और जेठानियाँ यह सुनकर हँसीको रोकनेके लिये मुँहमें दुपट्टे ठूँस लेतीं और वह स्वयं लज्जा
मारे सिर झुका लेती। यही कारण था कि अब अपने पतिकी सफलता, उनकी तनी हुई मूँछें,
उनका भ्रूभंग और उनकी तुनक-मिजाजी देखकर उसे एक प्रकारका संतोषही होता। उसे
भली भाँति ज्ञात था कि अब उसका छोटा जेठ अपना शेर भूल गया है और बड़े जेठको भी
अपने इस तिनके-से भाईकी सफलताको देखकर शर्म आने लगी है। आखिर उसके पतिने
अपनी योग्यताका सिक्का जमा दिया था। उसने जो कहा था कर दिखाया था। अपने खानदान
पिताकी सिफ़ारिशके बिना, केवल अपने परिश्रम, योग्यता और दयानतदारीके बल पर कैप्टन
बना और इस नये पदके लिये चुना गया। उसके कानोंमें अपने पतिके वे शब्द गूँज जाते जो
उसने अपनी नियुक्ति के समय कहे थे, "मैं ही पहला हिन्दुस्तानी हूँ जिसे इस आसामीके
लिये चुना गया है, नहीं आधी सदी हो गयी इस अखबारको निकलते हुए, कभी कोई हिन्दु-
स्तानी इसका एडीटर नहीं बना।"

प्याला खत्म करके कैप्टन रशीदने तिपाईपर रख दिया और बिस्कुट मुँहमें लिये टहलने
लगे। अखबार की कायापलट करनेकी स्कीम अब उनकी कल्पनामें अपने अन्तिम बिन्दुपर पहुँच
रही थी—उन्होंने प्रेसकी समस्त व्यवस्था बदल दी थी। प्रेस रेक्वीज़ीशन (Requisitio
करा लिया था। दोनों दफ्तरोंको इकट्ठा कर लिया था और उन दोनोंके एक मात्र इंचार्ज
गये थे। उनकी बुश-शर्ट पर अब तीन सितारोंके स्थान पर एक क्राउन लग गया था।
कल्पना ही कल्पनामें उसपर एक और स्टार लगता हुआ वे देख रहे थे।

उनकी बेगमने गर्वसे अपने पतिकी ओर देखा और प्यालेकी बची हुई चाय खाली प्लेट
उँडेलते हुए फिर घुमा-फिरा कर हनीफ़की बात चलायी।

"आपा† शमीम चाहे हमारी ज़रा दूर की रिश्तेदार होती हैं," उसने कहा, "पर आप
जानते हैं मैं उन्हें कितना मानती हूँ। हम दोनोंमें बहिनोंसे ज़्यादा मुहब्बत रही है।"

वह क्षण भरके लिए रुकी। कैप्टन रशीद पूर्ववत् घूमते रहे। बेगमने फिर कहा—

"खाला शमीम के बारेमें परेशान हैं। चार बरस उसकी शादी को हो गये, घरमें दो-दो
बच्चे हैं लेकिन भाई हनीफ़को अभी तक कोई अच्छी नौकरी ही नहीं मिली।"

वह फिर निमिष भरके लिये रुकी। उसने दूसरे प्यालेमें चाय [illegible]

---

† आपा = बहिन

रर घूमने रहे। उनकी भवें तन गयीं जिससे उनके मस्तकपर नाककी सीधमें एक भाड़ी र बन गयी, चलते समय पैरोंपर उनके शरीरका बोझ बढ़ने लगा। बेगमने अपनी बात ; रखी—

"इस मेहगाईके ज़मानेमें साठ रुपयेसे तो एक आदमी की रोटी भी नहीं चलती।" ने लम्बी साँस भरी, "फिर आप। शमीमके दो-दो बच्चे, सास और ससुर हैं।"

वह प्यालेमें चीनी हिलाने लगी। कैप्टन रशीदने अब भी उत्तर न दिया। उनके ओंठ फड़ने लगे और दृष्टिमें उपेक्षा की लकीर और भी स्पष्ट हो चली, किन्तु एक तो उनका मुख नी बेगमकी ओर न था, दूसरे वह चीनी हिलानेमें निमग्न थी, इसलिये उसकी बातका जो भाव उसके पतिकी आकृति पर हो रहा था, उसकी ओर ध्यान दिये बिना प्यालीमें चमचा डोले-हिलाते बेगम अपनी बात कहती रही—

"जिनको अंग्रेज़ीकी ए. बी. सी. तक नहीं आती वे तो आज-कल दो-दो सौ रुपया पा हैं। हनीफ़ भाई तो बी. ए. आनर्स हैं, लेकिन वे लोग ग़रीब हैं और सिफ़ारिश उनकी..."

अब कैप्टन रशीदके लिये अपने आपको रोकना कठिन हो गया—"ओ बेवकूफ़ औरत!" होंने दिल ही दिलमें तिलमिलाते हुए कहा, "क्या मैंने किसीकी सिफ़ारिशसे यह नौकरी सिल की है? मेहनत, लियाक़त और दयानतदारी—दुनियामें यही कामयाबी की कुंजी है। ये यह रहीम हनीफ़ जैसे मूर्ख, निकम्मे, कामचोर और नाक़ाबिल आदमियोंके लिए नहीं पायी। मुझे तजुर्बेकार, मेहनती और खुद इनिशियटिव (Initiative) लेनेवाले असिस्टेंट हिये।" लेकिन अपने हमज़ुल्फ़की शानमें प्रकट उन्होंने कुछ नहीं कहा। उपेक्षा-मिश्रित क्रोधसे भरी एक दृष्टि उन्होंने अपनी इस वज्र-मूर्ख पत्नी पर डाली। घड़ीमें समय देखा। ठ हो गए थे। "मुझे असिस्टेंटकी ज़रूरत है, बहनोईकी नहीं!" सिर्फ़ इतना कह र दूसरा प्याला पिये बिना वे बाहर निकल गये।

उनकी पत्नी निराशासे वहीं की [illegible]
र विकल मनसे चमचा हिलाती रही।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क']

वर्ष पहले अफ़गानिस्तानके क़बायली इलाकेमें लड़नेवाले सै
गया था और उस समय जब कैप्टन रशीदने इसकी बागडो
भाषाओंमें निकलता था।

साधारण समाचारपत्रों तक सैनिकोंकी पहुँच नहीं होती।
पहाड़ों, बीरानों और रेगिस्तानोंमें उन्हें लड़ना पड़ता है और यद्य
समयको खेल-तमाशोंसे भरनेका भरसक प्रयत्न किया जाता
(organ) की आवश्यकता अनुभव की गयी जो उन, लगभग अपढ़
भर सके जो शारीरिक परिश्रम, खेल-कूद राप-शपके बाद उनपर भ
घरकी, बाल-बच्चोंकी (बाल-बच्चोंसे प्रिय, खेत-खलिहानोंकी), यार
जिले (और इस प्रकार अपने गाँव) के मौसम तथा फ़सलोंकी स्थि
खबर, सगे-सम्बन्धियों, मित्र-प्यारोंके सगाई-विवाह तथा जन्म-मरणके
आतुर हो उठते हैं, उनको इसी आवश्यकताको किसी हद तक पूरा
निकाला गया था। पहले पहल इसकी परिधि केवल दो पृष्ठों तक सीमित
के लिये बहुत छोटा स्टाफ़ था।

यद्यपि प्रत्येक युद्धके बाद इस स्टाफ़में कुछ ट्रांसलेटर-क्लर्कोंकी वृद्धि
व्यवस्थापक-अमला भी अब बहुत बड़ा हो गया था, परन्तु इसके सम्पादन अ
वही पचास वर्ष पुराना था।

पत्रका अधिकांश मसाला सरकारके इन्फरमेशन विभागसे सप्लाई हो
सम्पादक और प्रायः अंग्रेज़ी का टाइपिस्ट ही उसका सम्पादन कर लेते। दा
हो जाता। एक-एक कापी सभी सेक्शनोंमें बँट जाती और इसका अनुवाद हो जात
ऐसी चीज़ दूसरे एडीशनोंमें न छप सकती जो अंग्रेज़ीमें न छपती हो। यत्र-तत्र
भी पहले अंग्रेज़ी ही में लिखे जाते और फिर अंग्रेज़ीसे अनूदित होते। दूसरे संस्करण
लिये होते और अंग्रेज़ी उनके अफ़सरोंके लिये, ताकि वे देख सकें कि पत्रमें कोई
विद्रोहात्मक अथवा राजनीतिक चीज़ तो नहीं छपती। लेखों और उनके शीर्ष
कोई परिवर्तन न किया जाता।

कैप्टन रशीदने चार्ज सँभालते ही इस पत्रको एक जर्नलिस्टकी आँखोंसे देखा।
[illegible] छन गई, छाँट दिए गए, [illegible] पत्रको मेज़ पर पटकते हुए उन्होंने कहा, '[illegible]
(Rubbish) और एक सप्ताहके अन्दर-अन्दर उन्होंने समाचारपत्रकी सूरत [illegible]
[illegible] स्कीम बना ली।

[illegible] उनके अफ़सरोंने और बताया कि 'फ़िनांस' (Finance) वाले
[illegible] [illegible] करेंगे! [illegible] पत्र को आराममे चलता आता है [illegible]
इतने बड़े परिवर्तन कर वे किस प्रकार खुश रहेंगे! इस स्कीमको मान लेना तो [illegible]
[illegible] आदि, आदि..

[illegible]

जरनलिज्मका—जरनलिज्मको दूर रहा—अनुवाद-कला तक का कोई अनुभव नहीं, उन्होंने उर्दूके [illegible] संस्करणसे अनुवादके कुछ नमूने दिखाये कि किस प्रकार अनुवादक मक्खी पर मक्खी मार कर [illegible] पत्रका सत्यानाश कर रहे हैं। फिर उन्होंने एक सर्वथा नयी युक्ति पेश की। "मैं अंग्रेजीका एडीशन देख सकता हूँ," उन्होंने कहा, "उर्दूका भी देख सकता हूँ, लेकिन हिन्दी, गुरुमुखी, तामिल, तेलुगू और मराठीका तो नहीं देख सकता। साठ-साठ रुपया पाने वाले क्लर्कोंके हाथमें वे एडीशन छोड़ दिये गये हैं। कौन जाने वे इसमें क्या नहीं छापते! हर एडीशनका एडीटर एक जिम्मेदार जरनलिस्ट होना चाहिये, जो न सिर्फ़ अख़बारके हर मज़मून पर नज़र रखे बल्कि उसकी एडीटिंगमें भी जंगकी नयी ज़रूरतोंके मुताबिक तब्दीली करता रहे।"

उनकी बात मान ली गयी। पत्रके प्रत्येक संस्करणके लिये अढ़ाई-अढ़ाई सौ रुपयेके वेतन पर एक-एक सब एडीटर और अंग्रेजीके लिये एक नया अनुभवी उप-सम्पादक रखनेकी स्कीम बनी और उसे फ़िनांस डिपार्टमेंटको भेज दिया गया।

फ़िनांस डिपार्टमेंटने पहले पहल केवल चार सेक्शनों के लिये सब एडिटर रखनेकी स्वीकृति दी और कहा कि यदि इससे समाचारपत्रमें कोई विशेष अंतर दिखाई दिया तो शेष दो सेक्शनोंके लिये भी सब-एडीटर रखनेकी स्वीकृति दे दी जायगी।

सर्दियोंके दिन थे और यद्यपि आठ बज चुके थे किन्तु धूप जैसे इस शीतमें जागने हुए डर [illegible] ही थी और इर्द-गिर्दकी कोठियोंके वासियोंकी भाँति कहीं पूरबकी सेज पर लिहाफ़ ओढ़े सो रही [illegible]। आकाशकी निद्रालस आँखोंमें अभी रातकी मस्ती शेष थी। किंतु धरती जाग चुकी थी। [illegible] दोनों ओरकी कोठियोंमें युकलिप्टस, जामुन, शिरीश, आम, नीमके वृहद् पेड़ोंकी अपेक्षाकृत नंगी [illegible]लियाँ आकाशकी निद्रालसी आँखोंको चूम रही थीं। ठंडी हवा चल रही थी और पेड़ोंके पत्ते [illegible]क और फुटपाथों पर उड़ रहे थे।

कैप्टन रशीदकी आँखें न उस समय आकाशका खुमार देख रही थीं न धरतीकी मस्ती। [illegible] तो अपने सामने अपने पत्रका चोला बदलता देख रही थीं। उनके समक्ष उनका पत्र [illegible] की भाँति अपनी पुरानी केंचुली उतार कर नयी बदल रहा था। अपने दोनों हाथ पतलूनकी [illegible] में डाले वे अपने मस्तिष्कमें उन चार खाली जगहोंके लिये आने वाले प्रार्थियोंसे इन्टरव्यू [illegible] रहे थे।

खाली जगहें यद्यपि चार ही थीं किन्तु उनके लिये (युद्ध कालमें बेकारोंका अभाव होनेके [illegible]र) अनगिनत आवेदन-पत्र आये थे। कैप्टन रशीदने उनमेंसे केवल २० को इन्टरव्यूके लिये [illegible]ला था। हर सेक्शनके लिये उन्होंने ५-५ उम्मीदवारोंको चुन लिया था। इन प्रार्थियोंमें कुछ अनि-[illegible] पत्रोंमें काम करते थे। उनकी योग्यता और अनुभवसे वे स्वयं परिचित थे, यही कारण था [illegible] चुनावमें उन्हें कठिनाई हो रही थी। कल्पना ही कल्पनामें कभी इसको और कभी उसको [illegible] हुए वे दफ़्तर पहुँचे।

दफ़्तरके [illegible] बरकाली उनकी प्रतीक्षामें एक स्टूल पर बैठा था। उनके पहुँचते [illegible] खड़ा होकर उसने उन्हें झुककर सलाम किया।

कैप्टन रशीदने उसके सलामका उत्तर नहीं दिया। अपने विचारोंमें मग्न वे कुर्सी पर [illegible] कुर्सीको छूते ही बैठ गये और उन्होंने घंटी पर हाथ रखा—टन्!

[illegible] बरकाली का [illegible] हुआ।

"[illegible] को सलाम दो!" [illegible] कैप्टन रशीदने [illegible]

[illegible]

वर्ष पहले अफ़ग़ानिस्तानके क़बायली इलाक़ेमें लड़नेवाले सैनिकोंके हितार्थ इसे [illegible] गया था और उस समय जब कैप्टन रशीदने इसकी बागडोर अपने हाथमें सँभाली [illegible] भाषाओंमें निकलता था।

साधारण समाचारपत्रों तक सैनिकोंकी पहुँच नहीं होती। घरसे सहस्रों योजन दूर [illegible] पहाड़ों, वीरानों और रेगिस्तानोंमें उन्हें लड़ना पड़ता है और यद्यपि उस समय भी उनके [illegible] समयको खेल-तमाशोंसे भरनेका भरसक प्रयत्न किया जाता था, फिर भी किसी ऐसे [illegible] (organ) की आवश्यकता अनुभव की गयी जो उन, लगभग अपढ़, सिपाहियोंकी उन [illegible] भर सके जो शारीरिक परिश्रम, खेल-कूद गप-शपके बाद उनपर भारी बन जाती है; जब [illegible] घरकी, बाल-बच्चोंकी (बाल-बच्चोंसे प्रिय, खेत-खलिहानोंकी) याद सताती है; जब वे [illegible] जिले (और इस प्रकार अपने गाँव) के मौसम तथा फ़सलोंकी स्थिति, बीवी-बच्चोंकी [illegible] खबर, सगे-सम्बन्धियों, मित्र-प्यारोंके सगाई-विवाह तथा जन्म-मरणके समाचार जाननेके [illegible] आतुर हो उठते हैं, उनकी इसी आवश्यकताको किसी हद तक पूरा करनेके लिये [illegible] निकाला गया था। पहले पहल इसकी परिधि केवल दो पृष्ठों तक सीमित थी और इसे निका[illegible] के लिये बहुत छोटा स्टाफ़ था।

यद्यपि प्रत्येक युद्धके बाद इस स्टाफ़में कुछ ट्रांसलेटर-क्लर्कोंकी वृद्धि होती गयी [illegible] व्यवस्थापक-अमला भी अब बहुत बड़ा हो गया था, परन्तु इसके सम्पादन और व्यवस्था [illegible] वही पचास वर्ष पुराना था।

पत्रका अधिकांश मसाला सरकारके इन्फरमेशन विभागसे सप्लाई होता था। [illegible] सम्पादक और प्रायः अंग्रेजी का टाइपिस्ट ही उसका सम्पादन कर लेते। यह मसाला [illegible] हो जाता। एक-एक कापी सभी सेक्शनोंमें बँट जाती और इसका अनुवाद हो जाता। कोई [illegible] ऐसी चीज दूसरे एडीशनोंमें न छप सकती जो अंग्रेजीमें न छपती हो। पत्र-पत्र और [illegible] भी पहले अंग्रेजी ही में लिखे जाते और फिर अंग्रेजीसे अनूदित होते। दूसरे संस्करण सैनिकोंके लिये होते और अंग्रेजी उनके अफ़सरोंके लिये, ताकि वे देख सकें कि पत्रमें कोई [illegible] विद्रोहात्मक अथवा राजनीतिक चीज तो नहीं छपती। लेखों और उनके [illegible] कोई परिवर्तन न किया जाता।

कैप्टन रशीदने चार्ज सँभालते ही इस पत्रको एक जरनलिस्टकी आँखोंसे देखा। उनकी भवें तन गईं, ओंठ बिचक गए, अतीव उपेक्षासे पत्रको मेज पर पटकते हुए उन्होंने कहा, 'रबिश!' (Rubbish) और एक सप्ताहके अन्दर-अन्दर उन्होंने समाचारपत्रकी पूरी [illegible] बदल डालनेकी स्कीम बना ली।

हेड आफिसमें उनके अफ़सरोंने शोर मचाया कि 'फिनांस' (Finance) वाले इस स्कीमको कैसे स्वीकार करेंगे? भारी कम्पनीने जो पत्र बड़े आरामसे चलता आया है उसमें इतने बड़े परिवर्तन पर वे किस प्रकार चुप रहेंगे? इस स्कीमको मान लेना तो पहले अखबारको मृत्यु मान लेनेके बराबर होगा; आदि, आदि...

नलिस्टका—जरनलिज्मतो दूर रहा—अनुवाद-कला तक का कोई अनुभव नहीं, उन्होंने उर्दूके रूपमें अनुवादके कुछ नमूने दिखाये कि किस प्रकार अनुवादक मक्खी पर मक्खी मार कर का सत्यानाश कर रहे हैं। फिर उन्होंने एक सर्वथा नयी युक्ति पेश की। "मैं अंग्रेज़ीका शन देख सकता हूँ," उन्होंने कहा, "उर्दूका भी देख सकता हूँ, लेकिन हिन्दी, गुरमुखी, मल, तेलुगु और मराठीका तो नहीं देख सकता। साठ-साठ रुपया पाने वाले क्लर्कोंके हाथमें वे शन छोड़ दिये गये हैं। कौन जाने वे इसमें क्या नहीं छापते! हर एडीशनका एडीटर एक नेदार जरनलिस्ट होना चाहिये, जो न सिर्फ अख़बारके हर मज़मून पर नज़र रखे बल्कि ो एडीशनमें भी जंगकी नयी ज़रूरतोंके मुताबिक तब्दीली करता रहे।"

उनकी बात मान ली गयी। पत्रके प्रत्येक संस्करणके लिये अढ़ाई-अढ़ाई सौ रुपयेके वेतन पर एक सब एडीटर और अंग्रेज़ीके लिये एक नया अनुभवी उप-सम्पादक रखनेकी स्कीम बनी उसे फिनांस डिपार्टमेंटको भेज दिया गया।

फिनांस डिपार्टमेंटने पहले पहल केवल चार सेक्शनों के लिये सब एडिटर रखनेकी ति दी और कहा कि यदि इससे समाचारपत्रमें कोई विशेष अंतर दिखाई दिया तो ो सेक्शनोंके लिये भी सब-एडीटर रखनेकी स्वीकृति दे दी जायगी।

४

सर्दियोंके दिन थे और यद्यपि आठ बज चुके थे किन्तु धूप जैसे इस शीतमें जागते हुए डर ी और इर्द-गिर्दकी कोठियोंके वासियोंकी भाँति कहीं पूरबकी सेज पर लिहाफ ओढ़े सो रही ाकाशकी निद्रालस आँखोंमें अभी रातकी मस्ती शेष थी। किंतु धरती जाग चुकी थी। ोरकी कोठियोंमें युकलिप्टस, जामुन, शिरीश, आम, नीमके वृहद् पेड़ोंकी अपेक्षाकृत नयी ाँ आकाशकी निद्रासी आँखोंको चूम रही थीं। ठंडी हवा चल रही थी और पेड़ोंके पत्ते और पुष्पाओं पर डग रहे थे।

केप्टन रशीदकी आँखें न उस समय आकाशका खुमार देख रही थीं न धरतीकी मस्ती। अपने सामने अपने पत्रका चोला बदलना देख रही थीं। उनके समक्ष उनका पत्र भाँति अपनी पुरानी केंचुली उतार कर नयी बदल रहा था। अपने दोनों हाथ पतलूनकी डाले वे अपने मस्तिष्कमें उन चार खाली जगहोंके लिये आने वाले प्रार्थियोंसे इन्टरव्यू थे।

खाली जगहें यद्यपि चार ही थीं किन्तु उनके लिये (युद्ध-कालमें बेकारोंका अभाव होनेके) अनगिन आवेदन-पत्र आये थे। केप्टन रशीदने उनमेंसे केवल २० को इन्टरव्यूके लिये था। हर सेक्शनके लिये उन्होंने ५-५ उम्मीदवार चुन लिये थे। इन प्रार्थियोंमें कुछ प्रति- ोंमें काम करते थे। उनकी योग्यता और अनुभवसे वे स्वयं परिचित थे, यही कारण था ावमें उन्हें कठिनाई हो रही थी। [illegible] ही [illegible] कभी इनको और कभी उनको र वे दफ्तर पहुँचे।

[illegible] उनकी [illegible] एक स्टूल पर बैठा था। उनके पहुँचते खड़ा होकर

[illegible]
[illegible]!

हुए केप्टन रशीदने [illegible]

उपेन्द्रनाथ 'अश्क']

अपने अफ़सरको समयसे पहले आते देख कर जो क्लर्क उससे भी पहले आने
उनमें पंडित जिरपाराम सबसे आगे थे। ५५ वर्षकी आयु, बेफ़िक्री और बेकारीके का
थल-थल पिल-पिल शरीर, गंजा सिर, मुँह अगले दाँतोंसे वंचित—इस पत्रके दफ़्तरमें
नवयुवक क्लर्क के रूपमें आये थे और समय-समय पर हिन्दी, उर्दू, गुरुमुखी,
सेक्शनोंके ट्रांसलेटर और फिर इंचार्ज रह चुके थे। अनुवाद-कलामें उन्हें
प्राप्त हो, यह बात न थी। योग्यता प्राप्त होना तो दूर रहा, वे तो इस
सर्वथा अनभिज्ञ थे, किंतु उन्हें उस कलामें पूरी-पूरी निपुणता प्राप्त थी जो प्रायः सर
दफ़्तरोंमें एक क्लर्क को दूसरोंसे आगे निकल जानेमें सहायता देती है। अनुवाद तो उनके
मंद-भाग्य साथी करते थे। उनका काम तो साहबके लिये टैक्सी, राशन, पेट्रोल, मुर्ग़ मुर्ग़ियें
लेकर साहबकी मेमके लिये पाउडर, रूज़, क्रीम और ऐसी ही अनगिनत दूसरी चीज़ें जुटा
होता। सुबह आते समय और संध्याको जाते समय वे नियमित रूपसे साहबको सलाम करते
जब साहब हेड आफ़िस जाते तो वे प्रायः उनकी अर्दलीमें जाते, नहीं तो कमसे कम का
तक छोड़ने ज़रूर जाते और जब साहब वापस आते तो वे उन्हें कारसे लेने अथवा हेड आफ़िस
का हाल-चाल जानने ज़रूर पहुँचते। साहबकी मुस्कान पर खीसें निपोर देना और परेशानी
पर भवें चढ़ा लेना उन्हें खूब आता था। अपने इन्हीं गुणों की बदौलत वे धीरे-धीरे उन्नति पा
हुए सेक्शन के इंचार्ज हो गये थे। इससे पहले कि चपरासी उन्हें साहबका सलाम देने जाता,
वे दाँत निपोरते हुए साहब को सलाम करने स्वयं आ पहुँचे।

साहबने उनके सलामका उत्तर ज़रा-सा सिर हिलाकर दिया, मुस्कान का उत्तर देना
शायद उसने उचित नहीं समझा।

इस नये भारतीय साहब के मनोविज्ञानको समझने में सर्वथा असफल रहने के क
पंडितजी केवल खिन्नता से हँस कर खड़े रह गये।

"आज कितने लोग इन्टरव्यू के लिये आ रहे हैं?"

पंडितजी फ़ाइल लेने भागे।

कैप्टन रशीदने अख़बारका ताज़ा एडिशन उठाया। पहले पृष्ठपर ही टाइपकी इतनी
ग़लतियाँ थीं कि उनका खून खौल उठा। यह देख वे प्रेसके मालिकको फ़ोन करने ही वाले थे कि
टेलीफ़ोनकी घंटी बजी।

"हैलो!" चोंगा उठाते हुए उन्होंने कुछ असंतोषके स्वरमें कहा। दूसरी ओर उनके
पिता थे।

"हद्द!" उनके स्वरको पहचान कर ख़ानबहादुर बोले, "तुमसे शायद तुम्हारी अम्माने
कहा होगा। बेटा, ज़रा इलीकाका ख़याल रखना। कल वह मेरे पास आया था। वह अपना
रिश्तेदार भी है, और फिर...

"लेकिन अब्बा जान, आप क्या कहते हैं!" कैप्टन रशीदने अपने सिगार का
काटकर कहा, "इलीक तो इस पोस्टके लिये बिल्कुल नाक़ाबिल है।"

"नाक़ाबिल!" दूसरी ओरसे ख़ानबहादुर बोले, "बी. ए. आनर्स है।"

"बी. ए. आनर्स करनेसे कोई जरनलिस्ट तो नहीं बन जाता, अब्बा जान। मुझे
तजुर्बेकार जरनलिस्टकी ज़रूरत है जो अख़बारकी काया पलट दे। इलीकको तो जरनलिज़्मकी
ए. बी. सी. का भी इल्म नहीं।"

"अरे भई सीख लेगा। कौनसी चीज़ है जो मेहनती आदमी...."

अपने पिताके हठ पर कैप्टन रशीदकी भृकुटी तन गयी, पर बड़ी कठिनाईसे अपने आप
पर संयम रखकर उन्होंने सिगारका काग काटकर कहा, "यह अख़बारका दफ़्तर है, अब्बा

छियासीस

कोशिश करांगा। जे मैं एथे कामयाब हो गया ते साबने मेरे नाल वादा कीता है कि तयाने दी सिफ़ारश करेगा।" (१)

दफ़्तर में जाकर मेज़पर बैठते ही कैप्टन रशीदने घंटी पर हाथ मारा।

"पंडित किरपारामको सलाम दो", उन्होंने चपरासीको आज्ञा दी।

लेकिन पंडितजी स्वयं साहबको सलाम देने और उनसे हेड आफ़िसका हाल-चाल आरहे थे।

मुस्कराते हुए उन्होंने साहबका हुक्म पूछा।

पिछले तीन महीनेमें पहली बार कैप्टन रशीदने पंडितजीकी मुस्कान का उत्तर दि कुछ हकलाते हुए उन्होंने कहा, "सूबेदार साहब ब्रिगेडियरके आदमी हैं। ये गुरमुखीके एडीटर होंगे। ब्रिगेडियर साहब चाहते हैं कि अख़बारके स्टाफ़ पर एक फ़ौजी अफ़सर है चाहिये।" यहाँ उन्होंने वे सब युक्तियाँ दोहराईं जो ब्रिगेडियरने मीटिंगमें दी थीं। "इन्हें गुरमुखीके ट्रांसलेटरोंसे कह दें कि वे इनकी मदद करें और कोई तकलीफ़ न दें।"

"अजी आप चिन्ता न करें, सब ठीक हो जायेगा।" पंडितजीने आत्म-विश्वाससे हुए कहा, "जब तक मैं हूँ किसी अफ़सरको कोई कष्ट नहीं हो सकता। जिस तरह आप चाहते हैं वैसे ही होगा।"

और जब वे सूबेदार साहबको साथ लिये हुए कैप्टन रशीदके कमरेसे बाहर नि उनके ओठों पर मुस्कराहट और भी फैल गयी।

उनके बाहर जाते ही कैप्टन रशीदने फिर घंटी पर हाथ मारा।

"लेफ़्टिनेंट अलीको सलाम दो।"

लेफ़्टिनेंट के आनेपर उन्होंने पूछा, "मेरा पैग़ाम मिल गया था?"

"जी।"

"इन्टरव्यू ले लिया?"

"हिन्दी और गुरमुखी के उम्मीदवारोंका इन्टरव्यू हो गया है। बाक़ीको आपके हुक्म के मुताबिक़ कल आनेके लिये कह दिया है।"

"उन्हें भी निबटा देने। उम्मीदवारोंका चुनाव तो लगभग हो गया है।"

"अंग्रेज़ीके लिये कौन आ रहा है?"

"डायरेक्टर-जनरलका कोई आदमी है, ब्रिगेडियर कह रहे थे—डायरेक्टर जनरल कमिश्नर बहुत क़ाबिल मानते हैं, क्योंकि इन्होंने बाक़ी सब उम्मीदवारोंका पेट भरता है,—इनपर कोई आदमी ठेठ [illegible] आये।"

"और कई?"

"इसके लिये भी चुनाव हो गया समझिये।"

यह कहकर उन्होंने फ़ाइल उठायी और काममें लग गये। लेफ्टिनेंट अली अपने कमरेमें [illegible] गये।

कैप्टन रशीदने फ़ाइल अपने सामने रख तो ली लेकिन हस्ताक्षर वे एक कागज पर भी [illegible] सके। फ़ाइलको एक ओर हटाकर और ट्यूनिकके कालरोंको दोनों हाथोंमें पकड़े वे कमरेमें [illegible] लगे।

शाम हो चुकी थी। चपरासीने झिझकते हुए भीतर कमरेमें झाँक कर देखा, कैप्टन रशीद [illegible] तरह ट्यूनिकके कालरोंको थामे, सर झुकाये कमरेमें चक्कर लगा रहे थे।

दूसरी सुबह जब पंडित किरपाराम साहबको सलाम देने पहुँचे तो उन्होंने कैप्टन रशीद [illegible] कुर्सीपर एक नवयुवकको बैठे देखा। "यह मिस्टर हनीफ़ हैं, बी. ए. आनर्स हैं," [illegible] परिचय कराते हुए उन्होंने पंडितजीसे कहा, "ये यहाँ लेफ्टनका काम सँभालेंगे।"

पंडितजीने हीसे निपोरते हुए मिस्टर हनीफ़को सलाम किया और उनके साथ हो चले।

चलते समय कैप्टन रशीदके ये शब्द उनके कानमें पड़े—

"जरा ट्रांसफ़ेरोंसे यह दीजियेगा इन्हें काम सीखनेमें मदद दें।"

मारी तीन साहित्यिक पुस्तकें

जनता अजेय है

ले॰—वासिली ग्रोसमन; अनु॰—प्रकाशचन्द्र गुप्त

[illegible]

धरती के गीत

[illegible]

जन-जीवन और साहित्य

[illegible]

[illegible]

जन-प्रकाशन गृह, [illegible] बम्बई ४.

खाओ, उनका कपड़ा पहनो, उनके सुख आप भोगो और उनसे अपने चरण पुजवाओ। एक दयाल, एक मोनाई, गाँव भरका अनाज खा जाता है, गाँव भरके कपड़े पहन लेता है। हमारी खूराक, हमारे तन ढँकनेके कपड़े, उनकी, तिजोरियोंमें नोटोंके बंडल, सोने-चाँदी और हीरे-जवाहरातके तोड़ोंकी शक्लमें हिफ़ाजतमें रखे हैं। उनकी हिफ़ाजतके लिये भोजपुरिये लठैत हैं, बन्दूकें हैं, पुलिस है, क़ानून है। और हमारी हिफ़ाजत ?

पाँचूकी झुकी हुई आँखें मोहनपुरकी ओर उठीं। दयाल ज़मींदारकी हवेली गाँव-हदके पार थी। पाँचू अब मोहनपुरमें प्रवेश कर रहा था। झोपड़ियाँ—अब तो इन्हें झोपड़ियाँ कहना भी पाप होगा : मिट्टीकी चार टूटी हुई दीवालोंका ढूह; जिसके बाँस बिके, छप्पर बिके, किवाड़-चौखटे बिके, घर-गिरस्ती लुटी।

दो बच्चोंकी नंगी लाशें पड़ी हुई थीं। रासुकी झोपड़ी है। बच्चे शायद रासुके ही हैं। पाँचूसे रहा न गया, पास जाकर देखा, मौत अभी बच्चोंके साथ खेल ही रही थी। घड़ी-पलके मेहमान हैं। रासकी बहू बहुत पहले ही भाग गयी थी। रासू लुटेरोंमें मिल गया। घर-बार, माँ-बाप, सब साथ छोड़ गये—बस ये थकी-थकी साँसें एक-एक कर पल-दिन गिनती हुई किसी तरह अपना फ़र्ज़ पूरा होने तक साथ दिये जा रही हैं।...

पाँचू मौतको बहुत नज़दीकसे देख रहा था, बहुत ग़ौरसे देख रहा था। इस अकालमें यही हालत एक दिन उसकी और उसके घरवालोंकी...लेकिन अभी तो उसके पास चावल है। यह विचार आते ही फ़ौरन उसे यह भी ख़याल हुआ कि घरवाले उसकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे, भूखे होंगे—दीनू, परेश, नन्ही-सी मुन्नी, कनक—वह फ़ौरन ही वहाँसे हट आया, और तेज़ीसे अपने घरकी तरफ़ चलने लगा।

वह [illegible]। अपनी झोपड़ीसे टीन निकाल रहा है बेचनेके लिये।

वे पेड़के नीचे बूढ़ी [illegible]—कमरमें एक लंगोटी लगाये, दोनों हाथोंमें मिट्टीकी एक [illegible] थामे, सिर झुकाये खोई हुई सी बैठी है। कभी गाँव भरकी परिक्रमा [illegible] करती थी। पाँचूने इसका नाम नारदजी रख छोड़ा था। [illegible] टोलेमें वे [illegible] और [illegible] की आदी! वह भी एक दिन यों ही बैठे-बैठे मर जायगी। [illegible] शायद अब तक मर [illegible]। इन्हें कौन उठायेगा? [illegible] लाशें सड़ती रहेंगी! [illegible] होते [illegible]! [illegible] एक दिन उसकी भी लाश इसी तरह.. ! नहीं-नहीं, वह अपने लिये [illegible] [illegible] सोचना भी नहीं चाहता। तब उसे [illegible] इन [illegible] छिपानेके [illegible] करना चाहिये।

पाँचू [illegible]। उसको [illegible] हुई कि [illegible] देख आये। [illegible] [illegible] भूखे बैठे होंगे। [illegible]

[illegible]

पाँचूके [illegible] और [illegible]।

[illegible]

[illegible]

[चित्रकार—सुधीर खास्तगीर

अपराजित बंगाल

अमृतलाल नागर

दयाल जमींदार ने पाँच ही सेर दिया। पाँचू आस लगा के गया था कि उनके यहाँ [illegible] सहारा लगाऊँगा, सो उलटे ट्यूशन भी गयी। दयाल अपनी पत्नी और बच्चोंको कलकत्ते भेज रहे हैं। भुखमरोंकी बढ़ती हुई लूटपाट और हमलोंसे दयाल भी डरते हैं। डाकूओंसे डाकुओंका डर है। पचास भोजपुरिये लठैत और दो-दो बन्दूकें पास रखकर भी सपनोंसे चौंकते हैं वे लोग।

दयालवर्गके प्रति पाँचूका निष्क्रिय विद्रोह अपनी असमर्थता पर व्यंग बनकर उसके मस्तिष्कमें चुभ रहा था। अंतर्चेतन बुद्धिमें छिपा हुआ यह व्यंग पाँचूको चिढ़ा रहा था। और इसी चीज को दूसरे पहलूसे देखते हुए वह सोचने लगा। हमारी कमजोरीने ही इन्हें बढ़ावा दिया है। हमारे स्वार्थ-त्यागने ही इन्हें स्वार्थी बना दिया। हमारी सहनशीलताने ही इनकी स्वार्थ प्रवृत्तियों को हमपर अधिकाधिक अत्याचार करनेके लिये बढ़ाया है। सदियोंकी आदतने इन्हें एक झूठा बल दे दिया है। मन्दाग्निके रोगसे पीड़ित, चर्बी चढ़े हुए कुनमुने बदनके मसनदी गद्दोंके आगे [illegible] पहलवान भी [illegible] रखने लगता है। बड़े से बड़े बुद्धिमान भी इन कुन्दजहन पैसेवालोंकी अकलको तिजोरीकी तरह ही बड़ी [illegible] अपने अस्तित्वको साफ भुला देने हो वे अपनी रक्षा समझता है। यह सब इसीलिये कि इनके पास पैसा है। दुनियामें कमानेवाले वे मुट्ठीभर पैसेवाले [illegible] भारी [illegible], दानी बननेके ढोंग बनाकर [illegible] हुकूमत कर रहे हैं। और हुकूमतके मानी है इनकी रोटी

डगर-डगर आँखें घूर-घूरकर अन्नके एक दानेकी तलाशमें मोनाईकी दूकानके आसपास चक्कर करती हैं। कितने ही नर-कंकाल झुके हुए जमीनमें चावलकी सिर्फ एक कनी खोज रहे हैं। बेतरतीबीके साथ दाढ़ियाँ बढ़ी हुई हैं। औरतोंके बाल अस्त-व्यस्त, तमाम जिस्मकी नसें में हड्डियाँ चमक रही हैं। बच्चे इन्सानके बच्चे नहीं मालूम पड़ते। ये इन्सानकी बस्ती ही नहीं मालूम पड़ती। झुटपुटी साँझ धीरे-धीरे घिर रही थी। उस मद्धिम उजालेमें, ये हिलते-डोलते प्राणी ... पाँचू सोचने लगा: अगर टाटा, बिड़ला, रॉकफ़ेलर और फ़ोर्डके सामने अचानक आ जायँ! खाना ज़रा ठंडा हो जाय, या लज्जतमें कहीं कमी रह जाय तो हंटरोंसे नौकरोंकी खाल उधेड़ लेनेवाले साहब-दिमाग़ हिन्दुस्तानी आई. सी. एस. अफ़सरान, रायबहादुरान, रायसाहबान अगर संयोगसे इधर निकल आयें तो क्या वह इन लोगोंको अपने ही जैसा आदमी मानने के लिये तैयार होंगे? क्या वे यक़ीन कर लेंगे कि ये भूत नहीं, आदमी ही हैं! इनमें भी वही साँस चल रही है, जो उनके तनके अन्दर उन्हें अपनी अमीरी महसूस करा रही है? वे भूख उन सीमाओंको पार कर चुके हैं, जिनके आभास मात्रसे ही उनका रियासती रौब बर्दाश्त की हदसे गुज़र कर देरसे खाना परोसनेवाले नौकरोंके पेट पर लात मार देता है।

शहरके राजनीतिक वातावरणमें पनपा हुआ दिमाग़ इस समय शौक़िया तौर पर ऐसे सोच रहा था। उसके पास इस समय पाँच सेर चावल है। वह आज खाना खायेगा। चावल पानेके पहले वह भी भुखमरोंमेंसे एक था। वह भी भूखकी तकलीफ़को उसी तरह महसूस कर रहा था जैसे कि ये चलते-फिरते नर-कंकाल। लेकिन यह सन्तोष कि उसे और उसके परिवारके आज भोजन मिलेगा, उसे तमाम भुखमरोंसे अलग किये दे रहा है। इसके साथ ही साथ वह यह भी जानता है कि उसका यह सन्तोष अस्थायी है। उसका मन इसीलिये इन भुखमरे साथियोंका साथ छोड़नेसे इन्कार करता है। परसोंसे उसके और उसके परिवारका भविष्य भी इन्हींकी तरह कठोर हो जायगा। लेकिन इस वक़्त तो वह खुश है; फिर भी अपने प्रति ईमानदारी बरतते हुए, वह अपने आनन्दको अस्थायी बना देनेवाले दयाल और दयालके लोगोंपर बौद्धिक बड़प्पनके साथ झुँझला रहा है। खानेके मामलेमें आज वह दयाल और मोनाई के बराबर का ही दर्जा रखता है। फिर क्यों न उनपर झुँझलाये, और क्यों न अपने भविष्यके साथियोंका पक्ष ले?

सहसा पाँचूका ध्यान टूटा। मोनाईकी दूकानके सामने पाँच-छः जीवित कंकाल एकको घेरे हुये छीना-झपटी और हाथा-पाई कर रहे थे। उनकी अस्पष्ट और भयावह आवाज़ोंका सामूहिक स्वर साँझकी बढ़ती हुई अँधियारीको मनहूसियतका गहरा रंग दे रहा था। फिर पाँचूने देखा, उस घिरे हुए आदमीकी एक चीख़ इस मनहूस शोरमें एक दर्द पैदा करती हुई अचानक घुट-सी गई; और वह घिरा हुआ आदमी गिर पड़ा।

पाँचू दौड़कर पास पहुँचा। उसने देखा, मुनीर बढ़ई था। साँस नहीं चल रही थी। मर गया। हार्टफ़ेल हो गया शायद। मुनीरकी लाशके आस-पास चावल बिखरा था, जिसे बटोरने के लिये लोग बहशियोंकी तरह टूट पड़े थे। उन्हें इस बातका कोई ख़याल न था कि उनके पास ही एक आदमी—उनके एक साथी की लाश पड़ी हुई है। वे इस समय पूरे उत्साहके साथ ज़्यादासे ज़्यादा चावल बटोर लेनेके प्रयत्नमें थे। एक बार लाशको, फिर एक बार पाँचूको फटी हुई दृष्टिसे देखकर वे फिर अपने काममें लग गये। उनके हाथ छीना-झपटी करने लगे।

पाँचू चिल्लाया: "मार डाला न तुम लोगोंने इस बेचारेको!" उसकी बात पर उन जीवित कंकालोंके चेहरे उठे। उनके चेहरों पर विद्रूप भाव था। वे सूखी हुई मुट्ठियाँ, वे धँसी हुई आँखें जैसे प्रश्न कर रही हों: "क्या कहता है! हम अपना काम कर रहे हैं।" दो-एक निगाहें पाँचूके हाथकी पोटली पर गयीं। पाँचू सकपकाया। वह हट खड़ा हुआ। उसने एक बार मुनीर की लाशको ग़ौरसे देखा। मुनीरने अपने पूरे ज़िन्दगीमें कहींका बढ़ईगिरीका काम किया था। बड़ा भला आदमी था बेचारा।

के लिये तैयार हो गयी। मुनीरने सिर्फ़ एक अठन्नीके लिये सारे औज़ार बेच दिये। अठन्नी
बारह रोज़के भूखे और बीमार मुनीरके डगमगाते हुए कमज़ोर पैर जल्दसे जल्द मोनाई
दूकानपर पहुँच जानेके लिये लपके थे।

* * *

मुनीरकी लाशको उठाकर ले चलनेके लिये पाँचूने अपनी ही तरहके सहृदय और मृत्यु-
के 'मज़दूर' मरभुखोंको राज़ी कर लिया था। चावलकी गठरी अपने गलेसे बाँधकर
तरफ़ कर ली। चलनेमें पाँच सेर चावलोंकी गठरी पीठपर इधर-उधर हिलती, इससे गला
लगा था। हाथोंमें एक आदमीकी लाशका बोझ और मन भारी—बड़ी मुश्किलसे रास्ता तय
चाँद और रुकिया बापकी लाशको देखकर बेहाल हो गयीं। भूख, कमज़ोरी और बापकी
यह नन्हीसी रुकियाकी बर्दाश्तसे बाहर हो गया। वह बेहोश होगयी। चाँद दस बरसकी
रुकियासे ज़्यादा समझदार बाहोश और इसीलिये ज़्यादा तकलीफ़में। माँ घरपर नहीं है,
लाश घरपर आयी है, और छोटी बहन बेहोश पड़ी है। वह क्या करे?—बिलख
कर रो रही है, दम घुटने लगता है, एक दुखमें हज़ार दुख याद आ रहे हैं—अब्बा गये
ल लाने, और खाली हाथों यों आये! हा अब्बा! अब्बाकी यादमें भूखकी तड़पन थी,
वक्त अब्बाकी तरह ही अज़ीज़—अब्बासे ज़्यादा अज़ीज़ थी।

* * *

भूखोंकी मस्जिदके पास झाड़ीकी आड़में मुनीरकी बीबी खाना खा रही थी। और अज़ीम
पासही बैठा उसके बदनपर हाथ फेर रहा था। अज़ीमकी आँखोंमें बदज़ात थी, बनावनारन
[illegible] शिद्दतसे बीच-बीचमें होंठ काटने लगता था, आँखें चढ़ जाती थीं। मुनीरकी बीबीके
र उसके हाथोंका दबाव सहन हो जाता था। और मुनीरकी बीबी—वह खाना खा रही
र उसीमें अपनेको खोये रखना चाहती थी।

नूरुद्दीन मुनीरके मरनेकी ख़बर सुनकर उसके घर आ पहुँचा था। उसकी [illegible]
[illegible] आँसुओंके उसे प्यार-प्यार [illegible] रही थी। [illegible] देख रहे थे। "औरत
हुई है। शहर ले चलें। इस तरहसे अपने काम आयेगी। दो लड़कियोंकी माँ है [illegible]
अभी ढली नहीं है। काठी अच्छी है इसकी। चार दिन और अच्छे [illegible]
-पिलाई करूँगा, पठिया निकलेगी।...अज़ीम साला [illegible] रहा होगा। ख़ैर— [illegible]
[illegible] नीचा न दिखाया तो मेरा नाम भी नूरुद्दीन नहीं।
मुनीरकी लाश उठाकर लानेवाले तीनों [illegible] में किसीमें [illegible] नहीं थी कि
[illegible] क़ब्रिस्तान तक ले चलें। घरके पिछवाड़े, ज़रा दूरपर, एक [illegible] था। नूरुद्दीन
[illegible] ले आया। किसी तरह ज़मीन खोदी गयी। नूरुद्दीन [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
है [illegible] और कुछ—"
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

'बाग़ी रूहों का कोरस'

'जोश' मलीहाबादी

('बाग़ी [illegible] कविता है। [illegible] दे दिया गया है।)

ख़ाक पर मौदए-पैहम की लगी हैं मुहरें
ग़ैरत पर दोज़ए-उनम की लगी हैं मुहरें
दफ़्तरे-ऐश पे भी ग़म की लगी हैं मुहरें
गौरे-नारें पे जहन्नुम की लगी हैं मुहरें
फिर भी दुनिया पे है जन्नत का गुमाँ : क्या कहना !

रूह के पस्त-क़दए आलमे-अफ़लाक में भी—
वहमे-फ़िरदौसके ठंडे ख़सो-ख़ाशाक में भी—
फ़िक्रह की सर्दो ख़ुनक अंजुमने-'पाक' में भी—
दामनमो-बर्क़ के इस हल्क़ए-नमनाक में भी—
उठ रहा है दिले-इन्साँ से धुआँ, क्या कहना !

नग़मओ-ज़मज़मओ-जल्वओ-शेअरो-मैओ-जाम—
या ददैग़ा ! कि है इनमें से हरेक चीज़ हराम !
ख़ंजरे-ज़ोहद की युरिश से बपा है कुहराम,
लेकिन इस कूए-हलाकत में भी है गर्म-ख़राम
ज़ुल्फ़-बरदोश मसीहा-नफ़साँ ! क्या कहना !

शाहिदे-अरज़ है गो जौरे-फ़लक से बीमार,
हल्क़ पर ख़ंजरे-ख़ूँरेज़ है, सर पर तलवार,
ज़ुल्फ़ पर गर्दे-महो-साल है, चेहरे प ग़ुबार,
दिले नाज़ुक भी है गो वक़्त के तीरों से फ़िगार,
फिर भी अब्रू की लचकती है कमाँ : क्या कहना !

['बाग़ी रूहों का कोरस'

आफ़रीं बाद ! कि इस जब्रे-मशीयत पे भी है—
आफ़रीं बाद ! कि इस रौबे-मलूमत पे भी है—
आफ़रीं बाद ! कि इस ख़ौफ़े-उक़ूबत पे भी है—
आफ़रीं बाद ! कि इस दावते-जन्नत पे भी है—
दस्ते-इन्साँ में बग़ावत की छुरी ! क्या कहना !!

क्षिप्र भावानुवाद :—

मिट्टी पर अनवरत विलासकी छाप लगी हुई है; जीवन पर अश्रुपूर्ण नेत्रों की, ऐश्वर्य-वैभव पर शोक-सन्ताप की; कण-कण पर नरककी छाप लगी हुई है। फिर भी हम दुनियाको स्वर्ग बनानेका उत्साह है !

प्राणोंका लोक हिमने आच्छादित है; काल्पनिक स्वर्गके [illegible] ढहे हैं; वीतरागियोंकी 'पवित्र' गोष्ठी भी बर्फ-सी शीतल है। किन्तु दुर्दिन और हिमकी इस गीली दुनियामें भी मानवके अन्तरसे धुआँ उठ रहा है !

संगीत, नृत्य, सौंदर्य, काव्य, मदिराके जाम ! हाय, इनमेंसे प्रत्येकका निषेध है ! धर्मान्धताके खंजरने त्राहि-त्राहि मचा रखी है। किन्तु हम मृत्युपथपर भी मानवताके उन्नायक, आदर्श-प्राण मसीहा, हवामें संजीवन लिये, उन्मुक्त-देह घूम रहे हैं !

पृथ्वी-प्रियतमा क्रूर आसमानी अत्याचारोंसे आक्रान्त है; उसकी ग्रीवा और शरीर पर तलवार झूलती है, लटोंमें महीनों-वर्षोंकी गर्द और मुख पर धूल है; अनेक हृदय समय के तीरोंसे छलनी होगया है; किन्तु इस पर भी उसकी भवेंकी कमान फड़कती रहती है !

धन्य धन्य उस मानवके साहसको, कि नियतिकी क्रूरता और दैवगतिका आतंक, परलोकका भय और स्वर्गका आकर्षण होने पर भी, उसके हाथमें क्रान्तिकी शमशेर है !

इक्बाल

एक आदमीकी कुर्बानी

उरस बसामिक

मिलोराद स्टोसिश एक मामूली चौकीदार था। कंजके छोटेसे शहरमें जिसे उत्तरी र
प्रांतमें नात्सियोंने अपना केन्द्र बना रखा था वह पहरा दिया करता था। चारों त
ओरपर जंगलोंमें छापेमार फैले हुए थे जिन्होंने हिटलरको मजबूर कर दिया था कि वह
घाटियोंमें काफी सैनिकोंका अभाव रखे।

एक सुबह एक जर्मन सिविलियन—जो नात्सी फौजके साथ ही कंजमें आया था—
खड्डेमें मरा हुआ पड़ा मिला। फौरन दस जमानतदार फौजी हुक्मसे पकड़ मँगाये गये।
यह घोषणा होगयी कि इन दसोंको फाँसी देदी जायगी अगर चौबीस घंटेके अन्दर-अन्दर अस
मुजरिम अपने आपको सरकारके हवाले नहीं कर देगा।

मियाद खतम होनेके कोई एक घंटे पहले मिलोराड स्टोसिश नात्सी सदर-दफ्तरके सा
हाजिर होगया और कहा कि उसीने जर्मन सिविलियनकी हत्या की है। क्यों की उसने हत्या! उ
पूछा गया। उसने अपने ढीले-ढाले कंधे उचकाये और कहा कि—बस, कर ही डाली हत्य
उसने। पूछा गया—क्या और भी कुछ लोग उसके साथ थे?

दसों जमानती छूट गये और स्टोसिशको फाँसी पर लटका दिया गया। उसके बाद बहुत
दिनों तक वह फाँसी पर झूलता रहा, ताकि नागरिकोंको चेतावनी मिल जाय कि अगर कोई भी
स्लोवेनी जर्मनोंको हानि पहुँचायेगा तो उसका यही फल होगा।

* * *

चंद-एक लोगोंको, जो मिलोराड स्टोसिशको जानते थे कि उसका हृदय कितना कोमल
था, विश्वास नहीं आता था कि उसीने जर्मनकी हत्या की होगी। एक जनेने तो दावेके साथ कहा
कि वह तो ऐसा आदमी था जो च्यूँटीको भी बचाकर चलता था। एक और आदमीने कई
बार दुहराया कि जिस रातको हत्या हुई है मिलोराड शहरमें था ही नहीं।

इन लोगोंने गुप्त रूपसे जाँच की और असंदिग्ध रूपसे निर्णय दिया कि चौकीदार मिलो-
राड स्टोसिशका हत्यासे कतई कोई सम्बन्ध नहीं था।

यह भी मालूम होगया कि हत्या करनेवाला वास्तवमें कौन था। वह अपना काम समाप्त
करते ही पहाड़ोंकी तरफ़ भाग गया था और जाकर छापेमारोंमें शामिल हो गया था।

यह साफ़ था कि मिलोराड स्टोसिशने इन दस जमानतियोंकी जान बचानेके लिये ही

अपने प्राणोंकी बलि दी थी। पूरी तरहसे अपनेही दायित्व पर उसने ऐसा फ़ैसला किया था। क्यों उसने ऐसा फ़ैसला किया? इसका कोई कारण नहीं मिलता, न ही जाँच करनेवालोंने इस प्रश्नको उठाया। यह भी नहीं पता चलता कि ज़मानती कौन-कौन थे; यद्यपि जाँच करनेवालों की रिपोर्टसे इतना-कुछ मालूम हो जाता है, कि व्यक्तिगत रूपसे वह सम्भवत: इन लोगोंमेंसे किसीको न जानता रहा होगा। उससे किसी तरहका सम्बन्ध उनका कभी रहा था, किसीको याद नहीं। दो-तीन लोगोंने बताया, कि हाँ शहरमें उसे उन्होंने देखा था।

उसने क्यों अपनी बलि दी! क्या इसलिये, कि ज़मानतियोंमें कुछ लोग परिवारवाले थे और ख़ुद वह अकेला था! शायद; पर, शायद जीमें अपने आपको छोटा आदमी समझ कर उसने यह भी सोचा हो कि उसकी अकेली जानके आगे उन दस लोगोंकी जानें स्लोवेनियाके लिये—राष्ट्रीय संघर्षके लिये—अधिक मूल्यवान थीं। शायद वह यह महसूस करता था कि उसके देशमें जर्मन लोग (उनके अपने ही शब्दोंमें) 'जन-संख्या घटाव योजना' को अमलमें ला रहे थे, और स्लोवेनी जातिको जड़से मिटानेका काम संगठित रूपमें आरम्भ कर चुके थे। सम्भवत: यह देखकर उसने निश्चय किया हो कि दसोंकी जानें जायँ, इसके बजाय अगर एककी ही जाय तो अच्छा।

बादमें जर्मन कमांडरको किसी तरह पता चल गया कि हत्या मिलोराड स्टोसिचने नहीं की थी। नात्सी लोग उन ज़मानतियोंको पकड़नेके लिये आये जिनकी जान उसने बचा ली थी। उनमेंसे कोई भी न मिला। दसोंके दसों, कुछ तो अपने पूरे परिवारके साथ, पहाड़के जंगलोंमें चले गये थे।

नात्सियोंने और दूसरे दस आदमियोंको गिरफ़्तार किया और उन्हें शूट कर दिया।

लेकिन उत्तरी स्लोवाकियाके सुन्दर ऊँचे पहाड़ोंमें छापेमार लड़ाकुओंका एक जत्था था। जिनमें अधिकतर कैंजकी बस्तीसे आकर शामिल हुए थे, और इस जत्थेका नाम मिलोराड स्टोसिच ब्रिगेड था।

एक आदमीकी कुर्बानी

दुशन मसामिश

मिलोराद स्तोसिच एक मामूली चौकीदार था। कंबके छोटेसे शहरमें जिसे ...
प्रांतमें नाजियोंने अपना केन्द्र बना रखा था वह पहरा दिया करता था। चारों तरफ
होकर जंगलोंमें छापेमार फैले हुए थे जिन्होंने हिटलरको मजबूर कर दिया था कि वह ...
घाटियोंमें काफी सैनिकोंका जमाव रखे।

एक सुबह एक जर्मन सिविलियन—जो नात्सी फौजके साथ ही कंबमें आया था—
घरमें मरा हुआ पड़ा मिला। फौरन दस जमानतदार फौजी इकट्ठे पकड़ मंगाये गये और
यह घोषणा होगयी कि इन दसोंको फाँसी देदी जायगी अगर चौबीस घंटेके अन्दर-अन्दर
मुजरिम अपने आपको सरकारके हवाले नहीं कर देगा।

मियाद खतम होनेके कोई एक घंटे पहले मिलोराद स्तोसिच नात्सी सदर-दफ्तरके ...
हाजिर होगया और कहा कि उसीने जर्मन सिविलियनकी हत्या की है। क्यों की उसने हत्या? ...
पूछा गया। उसने अपने ढीले-ढाले कंधे उचकाये और कहा कि—बस, कर ही डाली ...
उसने। पूछा गया—क्या और भी कुछ लोग उसके साथ थे?

दसों जमानती छूट गये और स्तोसिचको फाँसी पर लटका दिया गया। उसके बाद कुछ
दिनों तक वह फाँसी पर झूलता रहा, ताकि नागरिकोंको चेतावनी मिल जाय कि अगर कोई
स्लोवेनी जर्मनोंको हानि पहुँचायेगा तो उसका यही फल होगा।

* * *

चंद-एक लोगोंको, जो मिलोराद स्तोसिचको जानते थे कि उसका हृदय ...
था, विश्वास नहीं आता था कि उसीने जर्मनकी हत्या की होगी। एक ने ...
कि वह तो ऐसा आदमी था जो च्यूँटीको भी बचाकर चलता था। ...
बार दुहराया कि जिस रातको हत्या हुई है मिलोराद शहरमें था ही न...

इन लोगोंने गुप्त रूपसे जाँच की और असंदिग्ध रूपसे निर्...
राद स्तोसिचका हत्यासे कतई कोई सम्बन्ध नहीं था।

यह भी मालूम होगया कि हत्या करनेवाला वास्तव...
करते
भाग गया
छा...

चीनका नया साहित्य

सतीश पुरोहित

किसी भी संकटग्रस्त देशके कलाकारोंके कामकी केवल एक कसौटी है, कि अपने देश-वासियोंको संकटके दलदलसे निकालनेके लिये वे किस तरह प्रयत्न करते हैं। चीन जैसे देशके कलाकारोंके लिये तो दूसरी और किसी कसौटीकी कल्पना भी नहीं की जा सकती देश पिछले आठ वर्षसे जीवन मरणके संघर्षमें जूझ रहा है, जिसके युवकों, युवतियों और ब[...] असीम यातनाएँ सहकर भी क्रूर शत्रुके सामने झुकनेका नाम नहीं लिया, जिसकी शक्ति[...] प्रमुख आधार साहस और मनोबल है, उसके कलाकारोंका उद्देश्य और क्या हो सकता है। अग[...] उनकी कला चीनी जनताको उत्साह और प्रेरणा न दे, अगर वह उन्हें अपने कर्तव्यके प्रति न[...] जाग्रत करे, तो उस कलाको व्यर्थ ही मानना पड़ेगा।

परन्तु चीनके साहित्य-सेवी और कलाकारको जिन परिस्थितियोंमें कार्य करना पड़ता है, वे पश्चिमी राष्ट्रोंसे सर्वथा भिन्न हैं। चीनकी अधिकांश जनता अपढ़ तथा अशिक्षित है। लिखित शब्दोंका उसके लिये कोई अर्थ नहीं। अतएव वहाँके कलाकारोंको अपनी बात कहनेके लिये अन्य साधनोंका प्रयोग करना पड़ता है। इन साधनोंमें मुख्य गीत, नाटक और चित्र हैं।

चीनकी सृजनात्मक कलाकी ऐतिहासिक विवेचना करनेसे ही हम वहाँके आधुनिक क[...]कारोंके दृष्टिकोणको समझकर उनके प्रयासोंका मूल्यांकन कर सकते हैं।

चीनमें नाटक खेलनेका रिवाज अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन कालके नाटक बन्द नाट्य-गृहोंमें होते थे। नाटकोंका सम्बन्ध सम्राटों, विजेताओं, सेनापतियों या रानियों और रनिवासोंके जीवनसे होता था। उनकी भाषा जटिल और दुरूह होती थी, हरेक आदमी उसे समझ नहीं सकता था। पात्रोंकी वेशभूषामें राजसी तड़क-भड़क और चमक-दमक रहती थी। नाटक-गृहों की सजावट बेशकीमती होती थी। पात्रोंको लम्बे अरसे तक शिक्षा होती थी और उनके प्रत्येक हाव-भावका पूर्ण संचालन किया जाता था। लोग देखने जाते थे, इसलिये नहीं कि इन नाटकों का उनके जीवनसे कोई सम्बन्ध था या वे उनकी समझमें आते थे, बल्कि इसलिये कि नाट्य-गृहों की सजावट-बनावट और रंगसाजी तथा पात्रोंकी वेशभूषा आदि दर्शनीय चीजें होती थीं।

कुछ इसी तरहकी अवस्था चीनी साहित्यकी थी। चीनी लिखित भाषाके अक्षरोंका सम्बन्ध उच्चारणसे नहीं है। अन्य भाषाओंमें प्रत्येक अक्षरका कोई अर्थ नहीं होता (कई अक्षरोंके मेलसे बने शब्दका अर्थ होता है), उसका केवल उच्चारण हो सकता है। परन्तु चीनी लिपिमें प्रत्येक अक्षर किसी विशेष विचार या वस्तुका भान कराता है। अतएव साधारण अखबार पढ़नेके लिये भी चीनी भाषाके कमसे कम ३-४ हजार अक्षरोंका ज्ञान आवश्यक होता है। अगर किसी शास्त्रीय पुस्तकका अध्ययन करना हो तब तो कमसे कम १७ हजार अक्षरोंका ज्ञान आवश्यक है। इस तरह लिखित भाषा और बोलचालकी चीनी भाषामें जमीन-आसमानका अन्तर है। पुराने लेखक प्राचीन शास्त्रीय [illegible] लेते थे, जिसका साधारण आदमीकी भाषासे कोई

आस्था थी, उन्होंने मिलकर अपने संगठन बनाये और जन-साहित्यके सृजन-कार्यमें संलग्न हो गये। इन्हीं लेखकोंने 'वामपन्थी लेखक संघ' 'प्रगतिशील लेखक संघ' आदि संस्थाएँ स्थापित कीं। परन्तु च्यांग काई-शेकके कठोर फ़ौजी शासनके नीचे उन्हें भारी बलिदान देने पड़े। कई लेखकोंको जेलोंमें सड़ना पड़ा, कईको फाँसीके तख्तेपर झूलना पड़ा। इन जुल्मोंसे बचनेके इन कलाकारोंको छिपकर काम करना पड़ता; एक संस्थाको खत्म करके दूसरे नामसे उसे चल पड़ता। बहुतसे कलाकार जाकर चीनी लाल सेनामें शामिल हो गये।

चीनी संस्कृतिकी ये विभिन्न धाराएँ दस वर्ष तक अपनी राहोंपर अलग-अलग प्रवाहित होती रहीं। दोनों प्रवृत्तियोंने प्रत्येक क्षेत्रमें अपने ढंगकी कला और साहित्यके विभिन्न रूपोंका आविष्कार और प्रयोग किया। उदाहरणार्थ नाटकके क्षेत्रमें कुओमिन्तांग द्वारा शासित क्षेत्रमें रहस्यवादका स्थान प्रमुख रहा। च्यांगके कठोर नियंत्रण और फ़ासिस्टी जुल्मसे बचनेके लिये ही इस साधनका प्रयोग किया गया। किसी क्रान्तिकारी विषय अथवा जन-जीवन सम्बन्धी विषयपर लिखना क़ानूनन सम्भव नहीं था। अतएव लेखकोंको साधारण मध्यवर्गीय परिवार छोटी-मोटी बातोंपर नाटक लिखने पड़ते। दूसरी ओर क्रान्तिकारी लेखकोंका जनतासे सम्ब था। अपने प्रत्येक नाटकमें वे किसी न किसी समस्यापर प्रकाश डालते। इन लेखकोंका ढंग पुराना अवश्य था, परन्तु उनका मसाला नया था। ये नाटक किसी भी जगह खेले जा सकते थे। न इनमें अधिक वेशभूषाकी आवश्यकता थी और न भारी-भरकम रंगमंचकी। जनता इ नाटकोंका अर्थ समझती थी और इसीलिये इनका बहुत विकास हुआ।

साधारणतया यही स्थिति कला और संगीतके क्षेत्रमें थी। चूँकि कुओमिन्तांग क्षेत्रका बाहरी दुनियासे सीधा सम्पर्क था इसलिये वहाँके कलाकारोंके पास उच्च शिक्षाके साधन मौजूद थे। इस क्षेत्रके कलाकारोंको पाश्चात्य शिक्षाकी भी सुविधा मिली थी, अतएव वे अपनी तूलिका को चलाना जानते थे, और अपने वाद्य-यंत्रोंका उन्हें पूरा ज्ञान था। अपने माध्यम पर उनका पूरा अधिकार था।

कम्युनिस्ट सीमा-प्रान्तमें ये टेक्निकल साधन उपलब्ध न थे। वहाँके कलाकारोंके इतना समय न था कि वे 'प्रकृतिसे प्रेरणा लेकर' चित्रण करते अथवा बरसों बैठकर न नये रागोंका आविष्कार करते। अतएव इन क्रान्तिकारी कलाकारोंका मुख्य साधन 'वुडकट (लकड़ीपर चित्र गढ़नेकी कला) था। इसके कई अन्य कारण भी थे। वुडकट चीनकी अत्यन्त परम्परागत कला है। लकड़ीपर चित्र काटनेकी इस कलाको अनेक पीढ़ियोंसे बरत आया है। इसके अलावा उत्तरी चीनमें छापनेकी आधुनिक मशीनोंका, ब्लॉक अभाव है। कुओमिन्तांग क्षेत्रमें क्रान्तिकारी कलाकारोंके ग़ैर-क़ानूनी छापेखा एक ऐसा साधन था जिससे इन छापेखानोंको खुफ़िया पुलिससे बचाया जा

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं ये दो विरोधी प्रवृत्तियाँ दस राहपर बढ़ती रहीं। १९३७ में जब जापानने चीन पर आक्रमण एक बार ये दो धाराएँ एक जगह आ मिलीं। कुओमिंतांग संयुक्त मोर्चेने इन दो प्रवृत्तियोंके कलाकारोंको मिलनेका क्षेत्रके कई महान कलाकारोंको पहली बार स्वतंत्रताकी साँस बार सोतेसे उठकर, आँख खोलकर उन्होंने जनताकी ओर समझनेकी कोशिश की। रहस्यवाद और जन-जीवनसे मुँह देकर उन्होंने अपनी योग्यताका उपयोग देशभक्तिके कार्योंमें

यह काल भी अस्थायी रहा। फिर भी इस काल कला १९३७ और १९३९ के बीच प्रायः सभी प्रमुख कलाकार संगठि

छोड़कर कम्युनिस्ट चीनकी राजधानी बनाने चले गये। इसलिये १९३९ में च्यांग नीतिके कारण चीनमें गृह युद्धके बादल जब फिर मंडराने लगे, तब चीनके अधिकांश नाट्यकार, और संगीत-विशेषज्ञ चुंगकिंगमें नहीं, येनानमें थे। कुओमिन्तांग सरकारको जरूरत नहीं थी। जापानविरोधी युद्धमें जिन युवकों, किसानों, मजदूरों और कला पूरी शक्तिसे च्यांगका साथ देना शुरू किया था उनकी अब आवश्यकता नहीं रह गयी। क्योंकि दुनियाकी दृष्टिमें कुओमिन्तांग सरकारका दुश्मन जापान था, परन्तु वास्तवमें जाप फ़ौजोंसे लड़ाई बंद हो चुकी थी और अब कम्युनिस्टोंके खिलाफ षड्यंत्र शुरू हो रहे थे। इसी लिये जापानके सबसे दुश्मनोंसे अब पट नहीं सकती थी।

१९३९ में फिर एक बार चीन राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टियोंसे दो भागोंमें जित हो गया। एक ओर कुओमिन्तांग क्षेत्र था। जिसका बाहरी दुनियासे सम्पर्क अवश्य परन्तु यहांकी जनता भयंकर फ़ौजी तानाशाही तथा मुनाफ़ाखोरों, भ्रष्ट और चोर-बाजारियों, घूसखोरोंके बीच दबी कराह रही थी। दूसरी ओर था उत्तरी-पश्चिमी कम्युनिस्ट सीमा-प्रान्त जापानी प्रभावकी छायासे सर्वथा मुक्त प्रदेश। यद्यपि दुनियासे इस प्रदेशका बाहरी कोई सम्पर्क नहीं था, च्यांगकी तथा जापानी फ़ौजोंने उसे चारों तरफ़से घेर रखा था, फिर भी वहाँकी जनता सच्चा जनवादी शासन क़ायम करने, स्वयं-सहायता आंदोलनद्वारा नया आर्थिक ढाँचा स्थापित करने और नया स्वतंत्र जीवन बनानेके कार्यमें अपूर्व दृढ़तासे संलग्न थी। इन दो क्षेत्रोंमें साहित्यिकों और कलाकारोंका क्या स्थान था?

चीनके दो भाग

कुओमिन्तांग क्षेत्रसे कलाकारों और साहित्यिकोंका जैसे अब लोप हो गया। जो साहित्यिक रचना हो भी रही है, उसका जनताके जीवनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। जो लिखे जाते हैं उनमें वास्तविकताका अंश नहीं होता। सेंसरका नियंत्रण इतना कठोर है मुनाफ़ाखोरों, घूसखोरों आदिके बारेमें एक शब्द भी नहीं लिखा जा सकता। मुनाफ़ाखोरी चोर-बाजारी और अधिकारियोंद्वारा घूसखोरी चुंगकिंगसे ज़्यादा दुनियामें शायद ही कहीं होती हो, फिर भी इनके सम्बन्धमें ज़बान नहीं खोली जा सकती। इसी तरह फ़ौजकी अथवा अ किसी सरकारी विभागकी कमज़ोरियों पर प्रकाश डालना भयंकर गुनाह माना जाता है। प्रत्ये साहित्यिक रचनाको सेंसरकी नज़रसे गुज़रना पड़ता है। च्यांग सरकारके निकम्मेपनके कारण कला- सृजनात्मक शक्ति प्रायः लुप्त हुई जा रही है। हाल ही की एक घटना इस नौकरशाहीके अंधेपनका प्रमाण है। एक सुप्रसिद्ध लेखकने फ़ौजी डाक्टरी विभागकी कमज़ोरियोंपर एक नाटक लिखा था। च्यांग काई-शेकने सुना कि नाटक बहुत सुन्दर है। जब च्यांगने अपने समाचार-विभागके मंत्रीसे इस विषयमें पूछा तो मंत्री महोदयने कहा कि 'मैंने नाटक नहीं देखा।' च्यांगने उन्हें 'बहुत डाँटा' तो दूसरे दिन उन्होंने नाटक देखा और मंचपर जाकर नाट्यकारको बधाई दी। परंतु बेचारे मंत्रीका दुर्भाग्य! च्यांगको मालूम होगया कि नाटक तो घूसखोरी, मुनाफ़ाखोरी और फ़ौजके डाक्टरी विभागकी कमज़ोरियोंका पर्दा फ़ाश करता है। एक बार फिर मंत्री महो-दयको आड़े हाथों लिया गया।

कुओमिन्तांग सरकारकी नौकरशाहीने साहित्यिकों और कलाकारोंका गला दबा रखा है। दूसरी ओर मुक्त क्षेत्रोंमें क्या स्थिति है?

जो साहित्यिक और कलाकार कुओमिन्तांग क्षेत्रसे यहाँ चले आये थे उनमें देश-सेवाकी भावना और अटूट लगन थी। परन्तु कलात्मक सृष्टिके लिये केवल भावना और लगन ही पर्याप्त नहीं है। आज तक जिन विषयोंपर वह लिखते आये थे उनका इन नयी परिस्थितियोंमें कोई स्थान नहीं था। उनकी कृतियोंके पुराने, मध्य-वर्गीय सामाजिक चित्र

छोड़कर कम्युनिस्ट चीनकी राजधानी यनान चले गये। इसलिये १९३९ में च्यांग काई-
नीतिके कारण चीनमें गृह-युद्धके बादल जब फिर मँडराने लगे, तब चीनके अधिकांश बुद्धि
नाट्यकार, और संगीत-विशेषज्ञ चुंगकिंग में नहीं, येनानमें थे। कुओमिन्तांग सरकारको अ
जरूरत नहीं थी। जापानविरोधी युद्धमें जिन युवकों, किसानों, मजदूरों और बुद्धिजी
पूरी शक्तिसे च्यांगका साथ देना शुरू किया था उनकी अब आवश्यकता नहीं रह गयी थी
क्योंकि दुनियाकी दृष्टिमें कुओमिन्तांग सरकारका दुश्मन जपान था, परन्तु वास्तवमें जापानी
फ़ौजोंसे लड़ाई बंद हो चुकी थी और अब कम्युनिस्टोंके खिलाफ़ षड्यंत्र शुरू हो रहे थे। इसी-
लिये जपानके सच्चे दुश्मनोंसे अब पट नहीं सकती थी।

१९३९ में फिर एक बार चीन राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टियोंसे दो भागोंमें विभा-
जित हो गया। एक ओर कुओमिन्तांग क्षेत्र था। जिसका बाहरी दुनियासे सम्पर्क अ
परन्तु जहाँकी जनता भयंकर फ़ौजी तानाशाही तथा मुनाफ़ाखोरों, अन्न और कपड़ा-चोर
घूसखोरोंके बीच दबी कराह रही थी। दूसरी ओर था उत्तरी-पश्चिमी कम्युनिस्ट सीमा-प्र
जापानी प्रभावकी छायासे सर्वथा मुक्त प्रदेश। यद्यपि दुनियासे इस प्रदेशका बाहरी कोई
नहीं था, च्यांगकी तथा जापानी फ़ौजोंने उसे कई तरफ़से घेर रखा था, फिर भी, वहाँकी ज
सच्चा जनवादी शासन क़ायम करने, स्वयं-सहायता आंदोलनद्वारा नया आर्थिक ढाँचा स्था
करने और नया स्वतंत्र जीवन बनानेके कार्यमें अपूर्व दृढ़तासे संलग्न थी। इन दो ...
साहित्यिकों और कलाकारोंका क्या स्थान था ?

चीनके दो भाग

कुओमिन्तांग क्षेत्रसे कलाकारों और साहित्यिकोंका जैसे अब लोप हो गया। जो थोड़ी
साहित्यिक रचना हो भी रही है, उसका जनताके जीवनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। जो नाट
लिखे जाते हैं उनमें वास्तविकताका अंश नहीं होता। सेंसरका नियंत्रण इतना कठोर है कि
मुनाफ़ाखोरों, घूसखोरों आदिके बारेमें एक शब्द भी नहीं लिखा जा सकता। मुनाफ़ाखोरी,
चोर-बाजारी और अधिकारियोंद्वारा घूसखोरी चुंगकिंगसे ज्यादा दुनियामें शायद ही कहीं हो
हो, फिर भी इनके सम्बन्धमें ज़बान नहीं खोली जा सकती। इसी तरह फ़ौजकी अथवा अन
किसी सरकारी विभागकी कमजोरियों पर प्रकाश डालना भयंकर गुनाह माना जाता है। प्रत्येक
साहित्यिक रचनाको सेंसरकी नजरसे गुजरना पड़ता है। च्यांग सरकारके निकम्मेपनके कारण कला-
सृजनात्मक शक्ति प्रायः लुप्त हुई जा रही है। हाल ही की एक घटना इस नौकरशाहीके अंधेरका
प्रमाण है। एक सुप्रसिद्ध लेखकने फ़ौजी डाक्टरी विभागकी कमजोरियोंपर एक नाटक लिखा
था। च्यांग काई-शेकने सुना कि नाटक बहुत सुन्दर है। जब च्यांगने अपने समाचार-विभागके
मंत्रीसे इस विषयमें पूछा तो मंत्री महोदयने कहा कि 'मैंने ...
'बहुत ठाँटा' तो दूसरे दिन उन्होंने नाटक ...
परंतु बेचारे मंत्रीका दुर्भाग्य ! च्यांगको ...
और फ़ौजके डाक्टरी विभागकी ...
दपको आड़े हाथों लिया गया।

कुओमिन्तांग सरकारकी नौ...
दूसरी ओर मुक्त क्षेत्रोंमें क्या ...
जो साहित्यिक और कलाकार ...
भावना और अटूट लगन थी। ...
पर्याप्त नहीं है। आज तक जिन ...
कोई स्थान नहीं था। उनकी ...

चीनके साहित्यके विषयमें लिखते समय हम चीनके समाचार पत्रोंको नहीं भूल सकते। कुओमिन्तांग चीनमें छपाईका प्रबन्ध है, अतएव समाचार पत्रोंके निकालनेमें अधिक कठिनाई नहीं होती। परन्तु कम्युनिस्ट क्षेत्रोंमें छपाईका प्रबन्ध नहींके बराबर है। फिर भी वहाँ हजारों अखबार प्रकाशित होते हैं। जहाँ छापनेकी मशीनें नहीं हैं वहाँ साइक्लोस्टाइलसे अखबार निकाले जाते हैं। जन-प्रतिनिधियों और सैनिकोंके साथ-साथ बैठकर लेखक और कलाकार उन्हें तैयार करनेमें योग देते हैं। दूरके गाँवोंमें जहाँ यह भी सम्भव नहीं, वहाँ काला तख्ता ही काममें लाया जाता है। गाँवके चौराहेपर इस तख्तेको खड़ा किया जाता है; उसपर राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय समाचार प्रतिदिन लिखे जाते हैं।

इसी तरह फौजकी प्रत्येक टुकड़ीका अपना 'दीवार-पत्र' होता है जिसमें पारस्परिक आलोचनाएँ, वीरताके उदाहरण, कार्टून आदि निकला करते हैं। ये दीवार-पत्र प्रत्येक सैनिकके लिये मार्ग-दर्शकका कार्य करते हैं। साथ ही नवजात लेखकों और साहित्यिकोंको लिखने की प्रेरणा देने, और उन्हें ढूँढ निकालनेका भी काम ये दीवार-पत्र करते हैं।

चीनकी जनताने आठ वर्षोंके संघर्षमें इतना बलिदान किया है जितना सोवियतको छोड़ शायद ही किसी दूसरे देशकी जनताने किया हो। परन्तु आज भी वह राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे दो भागोंमें विभाजित है।

भविष्य

एक क्षेत्रमें जनता दबी, कुचली हुई, आर्तनाद कर रही है, और फासिस्ट-परस्तोंकी तोंदें मोटी हो रही हैं, साहित्य और कलाका ह्रास हो रहा है। दूसरी ओर जनताका चीन प्रतिपक्ष आगे बढ़ रहा है, किसान एक नये जीवनका निर्माण कर रहे हैं, जनताकी शक्ति बढ़ रही है, इसलिये जनताका साहित्य भी अपूर्व गतिसे बढ़ रहा है। इस नये चीनके लेखक अपनी जननी जनताका दामन पकड़ कर आगे बढ़ रहे हैं। जनताके अन्दरसे नये-नये कलाकारोंका जन्म हो रहा है।

अगर ये दोनों धाराएँ मिल सकतीं तो कितने प्रतिभावान योग्य लेखकों और कलाकारोंको उन्मुक्त वातावरणमें साँस लेनेका मौका मिलता; और चीनके साहित्यिक और सांस्कृतिक जागरणका आन्दोलन तमाम देशमें फैल जाता। परन्तु यह निश्चित है कि अगर कुओमिन्तांग चीनमें बैठे हुए लोग ठीक नहीं हुए तो भी चीनके जन-प्रवाहको कोई रोक नहीं सकेगा। वहाँके क्रान्तिकारी साहित्यिक और कलाकार इस जन-प्रवाहको वेगवान बनानेमें महान योग देंगे।●

युद्ध क्षेत्रोंमें सबसे अनप्रिय बस्तु नाटक है। किसान हजारोंकी तादादमें इन्हें दे
है। युद्धसे अधिकांश नाटक अनूदित ही हुआ करते थे। परन्तु अब हालत बदल चुकी
१०% नाटक वहींके लेखकों द्वारा लिखे हुए होते हैं, जिनका चीनी जनताके
सम्बन्ध होता है। साथ ही अच्छे विदेशी नाटकोंका भी उपयोग किया जाता है।

एक सोवियत नाटकके विषयमें चीनमें एक बड़ी मनोरंजक घटना घटी जिससे
और कम्युनिस्ट क्षेत्रका अन्तर स्पष्ट हो जाता है। सुप्रसिद्ध सोवियत लेखक अलेक्जें
के नाटक 'मोर्चा' में एक ऐसे कमांडरका चित्रण है जो यद्यपि देशभक्त और ईम
पर दकियानूसी विचारोंका है। वह इस युद्धमें भी १९२० के तरीकोंका प्रयोग क
अन्तमें उसे पदच्युत कर दिया जाता है। चीनके मास्को-स्थित फ़ौजी प्रतिनिधिने इस
अनुवादको चुंगकिंग भेजा। च्यांगने हिदायत दी, इस नाटकको सभी डिवीजन-क
और उनके ऊपरके कमांडरोंके पास भेजा जाय (नीचेके कमांडरोंके पास नहीं), इसे ए
'पत्र समझा जाय और इसे कहीं खेला न जाय। चूँकि ८वीं (कम्युनिस्ट) फ़ौज भी ए
फ़ौजका एक भाग थी, अतएव उसे भी एक कापी मिल गयी।

आठवीं फ़ौजने इस नाटकका क्या किया? उसकी सैकड़ों कापियाँ बनायी गयीं। इन्हें स
मंडलियों, कमांडरों और फ़ौजी टुकड़ियोंके पास भेज दिया। और उन्हें हिदायत दी गयी कि
उसे ध्यानसे पढ़ें, उसकी आपसमें चर्चा करें और फिर उसे सभी सैनिकोंके सामने खेला
अब तक उक्त नाटक क़रीब तीन हजार बार खेला जा चुका है। इस प्रकार चीनमें यह न
पुराने, दकियानूसी ढीले-ढाले सैनिक अफ़सरों और जनताको सुधारने और शिक्षित करनेका
जबरदस्त अस्त्र बनाया गया; लेकिन कुओमिन्तांग चीनमें उसे ऊपरके कुछ लोगोंको दि
दबा दिया गया, जिससे निकम्मे अफ़सरोंकी पोल न खुल जाय।

कम्युनिस्ट क्षेत्रोंके नाट्यकार तब तक कुछ नहीं लिखते जब तक कि उस विषयकी
छान-बीन नहीं कर लेते। पहले उस विषय पर सब कुछ पढ़ते हैं, उस समस्याका अध्ययन क
हैं, उससे सम्बन्धित व्यक्तियोंसे भेंट करते हैं, तब क़लम उठाते हैं। अगर किसी विशेष युद्धके बारे
लिखना है तो उसमें भाग लेनेवाले सिपाहियोंसे बातचीत करेंगे तब लिखेंगे, फिर उनकी
रचनाको उन सिपाहियोंके सामने उपस्थित किया जायगा, उनकी सलाह और आलोचना प
विचार किया जायगा और तब जाकर उसे दूसरे स्थानोंमें दिखाया जायगा, यहाँ तक कि अगर
जापानियोंके विषयमें कुछ लिखना हो तो स्थानीय जापानी साथियोंको बुलाया जायगा। यु
चीनमें जापानी जनताकी स्वातंत्र्य संघ नामक संस्था है जिसमें बहुतसे फ़ासिस्ट-विरोधी जापानी
शामिल हैं।

येनान तथा कम्युनिस्ट क्षेत्रके अन्य बड़े शहरोंमें नाटक प्रदर्शनके लिये बड़े-बड़े नाट्य गृ
हैं। वहाँकी जनवादी सरकार इन गृहोंके निर्माणके लिये सहायता देती रहती है। आठवीं फ़ौ
की प्रत्येक गैरिजनका अपना नाट्य गृह है जिसे उसके सैनिकोंने स्वयं बनाया है।

परन्तु प्रत्येक गाँवमें नाट्य गृह बनाना सम्भव नहीं है। अतएव घूमनी-फिरती
मंडलियाँ गाँव-गाँवमें जाकर नाटक खेलती हैं। इन नाटकोंके लिये मंच और परदोंकी आ
नहीं होती। खुला मैदान, मन्दिरोंके चबूतरे, और गाँवकी सड़कें ही उनके मंच होते हैं,
जनता स्वयं इन नाटकोंमें भाग लेती है। मान लीजिये एक दृश्यमें सैनिकोंको कूच कर
दिखाना है, तो दर्शक सैनिकोंको कूच करनेके लिये कहा जाता है। ये नाटक अपने
स्वाभाविक वातावरणके कारण गाँवोंमें बहुत ही लोकप्रिय हैं।

इस प्रकार नाटक जीवी...

खंड तीसरा इस दुनियाका—योरप के पैताने,
जिसमें बसते हैं गुलाम, कुछ विद्रोही दीवाने !
इसमें कुछ नौआबादी हैं, कुछ हैं देश पुराने।
मज़हब, मिल्लत, मज़दूरी—जीने के यहाँ बहाने,
तन बिक जाते यहाँ, लबों पर और दिलों पर ताले !

चौथा खंड सोवियत, जिसका झलमल लाल सितारा;
जहाँ डूबती मानवताको मिलने लगा किनारा;
जहाँ हरा होता मानव का रेगिस्तान सहारा;
जहाँ सूख जाता दुखियों की आँखों का जल खारा;
इसी खंड से खड़े हुए जग के योद्धा रखवाले !

३

आग और लोहे से भीषण, नाज़ी दल के डग थे !
जर्मन फ़ौजें फिरी रूस की ओर, फिरे दिन जग के !
ठहर गए, जो दुनिया की जनता के डगमग पग थे !
लाखों जन मिट गए युद्ध में, अब तक जो कि अलग थे !
लाल फ़ौज ने जाने कितने गिरते देश सँभाले !

बच्चे-बच्चे बन गए दबे देशों के, वीर सिपाही !
देश-देश में जनता जागी, सहमी नौकरशाही !
पूँजीशाही के प्रति मन में बढ़ती थी आगाही;
हुई शुरू जन-जंग, बंद जनता की लापरवाही !
लगे तड़कने नाज़ी मकड़ी के लोहे के जाले !

४

बर्लिन को सर किया लाल फ़ौजों ने, खबरें आईं !
बिजली लोगों ने खोई आशाएँ आज जगाईं;
जनता की जब शुरू [illegible] फूटी नई [illegible];
पर गुलाम देशों की आहें [illegible] बार न [illegible],
क्योंकि जीत की दीवाली में [illegible] !

है गुलाम देशों में नाज़ी के दुश्मन भी [illegible],
[illegible] !
[illegible],
[illegible]
[illegible] !

५

[illegible]
[illegible] !
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

चेतावनी

नरेन्द्र शर्मा

एक मोरचा ख़तम हुआ है, उसकी कथा सुना के !
कुछ दिन की है शान्ति, शान्ति से कुछ दिन मन समझा के

१

मानव-मन की दुर्बलता से लाभ उठाने वाले—
नाज़ी दर्शन ने जनता पर बरसों डोरे डाले !
भूखे जर्मन-जनको देकर गौरव-मद के प्याले,
दिखा दूर से अन्य जनों के मुँहके गरम निवाले,
कुछ ही दिन में सजा लिए मानव-पशुदल मतवाले !

हुई जीत पर जीत, बढ़ा दुस्साहस भी दिन पर दिन;
उनके हाथों सदियों की तहज़ीब ढह गई पल-छिन !
जनता का विश्वास गया, रह गई ज़िन्दगी पापिन—
जीना क्या जीना है, जीते रहे अगर साँसें गिन ?
दीखे योरप के गुलाम माथे पर लाखों छाले !

२

चार खंड हैं इस दुनिया के, एक खंड अमरीका;—
भेद-भरम सब जान गए थे नाज़ी जिसके जी क
वहाँ मुनाफ़ाख़ोरी रस है और सत्य सब फीका-
धनकुबेर के भागों था योरप में टूटा छींका !
था अमरीका दूर, फ्रान्स को पड़े जान के लाले !

फ्रान्स और इँगलैन्ड पुराने अड्डे पूँजीशाही—
कुछ ही दिन रह सके जंग में संग और हमराही
पैरिस पाँवों में जा लेटा, बढ़ती चली तबाही;
क्रान्तिभस्म पैरिस में जंकर करते थे मनचाही;
ज्वालामुखी बने लन्दन पर घिरे मेघ परकाले !

इस प्रकार यह खंड दूसरा नहीं रह सका बस में,
नए-पुराने पूँजीशाही निपटे अब आपस में !
थी खूनी बरसात, प्राण भी घुटने लगे हुँमस में !
अंग्रेज़ी साम्राज्य फ्रान्स से बढ़ा रहा बल-कस में,
लन्दन में आ छुपे शाह सब भगोड़े ताज़ों वाले !

आग उगलती तोपों को अगणित जन बने निवाले !
टैन्कों की बख्तरों के लाशों पर हुए हवाले !
कुछ कहते हैं हटे विपत के बादल काले काले,
मिटते मिटते बची सभ्यता बड़ा रंग के माले !
पर क्या कुछ भी बदल सके हैं हम तुम दुनिया वाले !

अभी हमें आपस में बरसों लड़ना-मरना बाक़ी;
न्याय-सत्य से रीता जग, लोहू से भरना बाक़ी;
लपटों की छाया में भी ठंडा जी करना बाक़ी;
एक दूसरे के दिल में हमको घर करना बाक़ी;
ऊँच-नीच के रिश्ते हमने मन से नहीं निकाले !

★

प्रेमचंद : घरमें*

अमृतलाल नागर

१

कथा प्रेमचंदकी है, स्मृतियाँ शिवरानीजी की हैं। हम इसमें प्रेमचंदके चरित्रका निर्माण हो
हुआ देखेंगे। महान लेखककी घरेलू स्मृतियाँ उसके साहित्यकी आत्मा हैं।

प्रेमचंद कायस्थ, श्रीवास्तव दूसरे। सम्मिलित परिवार। गरीबी बेहद। अपने यहाँ लड़
निर्धनके धन माने गये हैं; तिसपर तीन लड़कियोंके बाद यह लड़का! बापने धनपतराय नाम
रखा, चचा ने नवाबराय बना दिया। मेरा ख़याल है, घरमें इनका प्यारका नाम भी नवाब ही
रहा होगा। प्रेमचंदने पिताके एक संवादका ज़िक्र किया है, जिसमें वे नवाब कहकर पुकारे जाते हैं।

होश सँभाला; अपने साथ सेतरका कलंक जुड़ा हुआ महसूस किया। दुबले-पतले भी
बहुत थे। माँ सदाकी मरीज़ और इनकी आठ बरसकी उमरमें दूसरे भाई बहिनोंके साथ इनका
हाथ भी अपने पतिको पकड़ा कर चली गयी। माँका प्यार अभाव बनकर बच्चेके भोले मनको
बड़ी बुरी तरहसे झकझोर गया।

और होश आया। निर्धनता खलने लगी। गरीबीके कारण छोटी जातके लोगोंमें बसन
पड़ता था। यों उनके साथ गुल्ली-डंडा या कबड्डी वगैरा खेल लेना दूसरी बात थी, मगर
किसी समवयस्कसे दोस्ती करना श्रीवास्तवके बेटेकी शानके ख़िलाफ़ था। स्कूल जाते थे;
ख़ान्दान और जातिमें बराबरके लड़के थे, वे लोग इनसे ज़्यादा पैसेवा
आपको ऊँचा समझते थे।

---

* प्रेमचंद : घरमें—लेखिका, श्रीमती शिवरानीदेव
बनारस। पृष्ठसंख्या २६८। युद्ध-जनित बढ़ा हुआ

ह हो जानेके कुछ अरसे बाद बाहरी स्त्रीसे भी अपना सम्बन्ध तोड़ दिया; और इसीकी
तिक्रिया-स्वरूप वे शिवरानीजीके सामने अपने दिलकी सारी दौलतके साथ झुक गये।

६

शिवरानीजीसे प्रेमचंद कहते : "अजी, तुम्हारे साथ पहलेसे मेरी शादी होती तो मेरा
वन इससे आगे होता।"

मनमें अच्छी तरह समझते हुए भी प्रेमचंद ऐसा कहकर शिवरानीजीको बहलानेके साथ-
थ शायद खुद अपनेको भी बहलाना चाहते थे। प्रेमचंद और शिवरानीजीका विवाह यदि पहले
ता तो दोनोंका सारा जीवन कलहमें ही बीतता। प्रेमचंद जितने बड़े स्वाभिमानी थे, शिव-
नीजी उनसे ज़रा भी कम नहीं। प्रेमचंद सत्य और मोहके द्वन्द्वसे उलझते हुए, प्रायश्चितकी
वना लेकर आगे बढ़े थे; शिवरानीजीके जीवनकी हरी बेल जो हिन्दू विधवाके संस्कारोंकी तेज़
से झुलस गयी थी, पुनर्विवाह द्वारा प्रतिक्रियाके रूपमें दूने जोशके साथ लहलहा उठी। निभ
ी। ऐसी निभी, कि शिवरानीजी प्रेमचंदके जीवनमें शक्ति बन कर समा गयीं।

सारी किताब पढ़ते हुए यह खयाल बार-बार आता है कि यह स्मृतियाँ एक ऐसी
ाभिमानिनी नारीकी हैं, जिसने एक पुरुषको प्रेमचंद ऐसा महापुरुष बना दिया। और उनका
ाया हुआ देवता सचमुच ही देवता बनकर उसके सारे जीवन पर छा गया। प्रेमचंदके देहमुक्त
जानेसे मानो शिवरानीजीके जीवनसे दो गहरे साथी निकल गये—एक प्रेमचंद, और दूसरी
खुद। शिवरानीजी आज जो कुछ भी हैं प्रेमचंदकी छाया मात्र हैं। उनकी खुशी तो प्रेमचंद
समाकर उनके साथ ही छिपी हुई यादकी गहराइयोंमें मिलती है।

"मरने पड़े थे। एक दिन कहने लगे : "एक चोरी सुनो। मैंने अपनी पहली [illegible]
[illegible] कालमें ही एक और स्त्री रख छोड़ी थी। तुम्हारे आने पर भी उससे मेरा सम्बन्ध था।"

"शिवरानीजीने फ़ौरन ही उत्तर दिया : "मुझे मालूम है।"

"यह सुनकर वे मेरी ओर देखने लगे। उस देखनेके भावसे ऐसा मालूम होता था जैसे वे
रे मुँह पर कुछ पढ़ लेना चाहते हों। मैंने उनको अपनी तरफ़ देखते देखकर निगाह नीची कर ली।
ी देर तक वे गम्भीर होकर मेरे चेहरेकी ओर देखते रहे। मैं शर्मसे सिर झुकाये खड़ी थी।
र-बार मेरे दिलके अन्दर खयाल हो रहा था कि इन बीती बातोंके कहनेका मतलब क्या है?"

"कुछ देरके बाद बोले : 'तुम मुझसे बड़ी हो।'"

शिवरानीजीके साथ अपने विवाहके समय प्रेमचंद जो झूठ बोले थे वह उनके [illegible]
[illegible] पर [illegible] रहा। खास तौरपर उस दिनसे, जबकि पहली बार [illegible] ही शिव-
ानीजीके सामने उनका वह झूठ खुल गया था। 'निष्ठुर मेरा [illegible]' [illegible]
[illegible] अपने दूसरे [illegible] [illegible] अपना [illegible]
[illegible] जब शिवरानीजीने कहा कि उन्हें मालूम है तो उनकी [illegible] शिवरानीजीके
[illegible] सिर झुक गया। प्रेमचंद बोले : "तुम इतने [illegible] मुझसे बड़ी हो, [illegible]
[illegible] हुए भी मुझसे [illegible] भी [illegible] नहीं किया!"

शिवरानीजीने उन्हें [illegible] रोक दिया : "मैं [illegible] नहीं [illegible]।"

[illegible] प्रेमचंद-शिवरानीजीका जीवन [illegible] है।

[illegible] शिवरानीजीसे शादी हुई। [illegible] हो [illegible]। शिवरानीजी [illegible]
[illegible]
[illegible]

नवाबरायके सपने पूरी तौर पर न फल पाये। दिल टूट गया।

एक कारण और भी था; इनकी चाची घरमें अपनी हुकूमत चाहती थीं, इसीलि
बाद इनकी सगी बहन तकको घरमें चैन न लेने देती थीं।

शादीके बाद जो अपने घर गयी तो पंद्रह बरस तक मैके ही न आने पायी। शुरूसे ही दा
रहनेके कारण प्रेमचंद चाचीसे दबते थे। उनके जायज़-नाजायज़ दबावके आगे सिर उठाने
हिम्मत न थी। (बादमें शिवरानीजीके प्रभावके कारण उनमें किसी हद तक यह हिम्मत आ
थी।) बहू कहीं मालकिन न बन बैठे इसीलिये शुरूसे ही चाचीने सासके पदका बोझ डालकर
कुचलनेका प्रयत्न किया। भतीजेके घर आनेपर चाची बहू-पुरान खोलकर सुनाने लगती
शिकायतोंने फटेमें पाँव डालकर दिल और भी चीर-चीर कर दिया। धनपतराय अपनी पत्नी
ओर से एकदम विमुख होगये।

भरी जवानी, दबा हुआ विद्रोह उभर रहा था। बाहर किसी स्त्रीसे सम्बन्ध स्थापि
हो गया, जो शिवरानीजीसे विवाह कर लेनेके बाद भी कुछ अरसेतक कायम रहा।

लेकिन अपनी इस चोरीसे मनको शान्ति नहीं मिलती थी।

५

शिवरानीजीकी पहली शादी ग्यारहवें सालमें हुई थी। हाथोंकी मेंहदी भी न छूटी थी
मांगका सिंदूर उतर गया। शिवरानीजी लिखती हैं : इसलिये मुझे विधवा कहना अन्याय है
वो सन् चार और पाँचका ज़माना! यू. पी. के ज़मींदार कायस्थोंका खान्दान! शिवरानी
के पिता मुंशी देवीप्रसाद बड़े सुलझे दिमाग़के आदमी थे जो इस सत्यको उस ज़मानेमें
पहचान सके। उन्होंने अपनी बेटीके विधवा-विवाहका विज्ञापन प्रकाशित करवाकर तत्काली
समाजको चुनौती दी।

धनपतरायने आगे क़दम बढ़ाया। बहुतसे लड़के नापसन्द कर देनेके बाद मुंशी देवीप्र
साहबको धनपतराय ही सबमें अधिक भाये।

शिवरानीजीके शब्दोंमें : "आप मेरे पिताके पसन्द आये। उन्होंने आपको बरच्छा
किरायेके रुपये दिये। मुझे यह भी नहीं मालूम कि मेरी शादी कहाँ हो रही है
मेरी शादीमें आपकी चाची वग़ैरह किसीकी राय न थी। मगर यह आपकी दिलेरी थी।
समाजका बन्धन तोड़ना चाहते थे। यहाँ तक कि आपने अपने घरवालोंको भी ख़बर नहीं
शादीमें ही मैं घर आयी और चौदह रोज़ रही।"

इस तरह धनपतरायके झकोले खाते हुए जीवनमें स्थिरता आयी। लेकिन इस शादी
कौनत उन्हें एक बहुत बड़ा झूठ बोलकर अदा करनी पड़ी थी। प्रेमचंदने अपने सह

रहें। वह डरते थे, घरमें अगर चाचीकी सत्ता रही तो एक दिन अवश्य ही इन्हें बनी
पत्नीसे भी विमुख कराकर ही दम लेगी। इतना बड़ा अपराध करनेके लिये धनपतराय त
तैयार न थे। मगर मुझसे हिम्मत की कमी भी महसूस करते थे, इसलिये शिवरानीजी
आगे करते थे। आठों पहरकी कलह घरमें रहती थी। एक दिन तो यहाँ तक गुस्सा बढ़ा
शिवरानीजी पर हाथ उठा बैठे। लेकिन यह मार प्यारमें बेवजीकी मार थी, दो
दिलोंको और भी नजदीक ला दिया।

इन अशान्तिके दिनोंमें ही प्रेमचंद का लिखना बड़े जोरके साथ शुरू हुआ। इन
साहित्यके साथ जो रिश्ता बँधा वह जीवन भर न छूटा।

आराम-मोह जीवनसे सन्धि करने पर मजबूर करता था। किताबमें जगह-जगह इसकी झ
मिलती है।

महोबेमें डिप्टी साहबको बेगारमें दूध-घी आदि मिलनेकी प्रथा थी। डिप्टी धनपतराय
बेगार लेनेसे इन्कार किया। लोगोंने क़ायदेकी दुहाई दी। ग़लत क़ायदेकी जड़ उखाड़ फेंकने
साहस धनपतरायमें न था। अपनेको इस तरह बहला लिया कि मैं खुद न खाऊँगा, नौ
खाया करेंगे।

जीवनमें जहाँ खुद नीचे गिरने लगते थे, वहाँ साहित्यमें आदर्श की बाँह पकड़कर त
थे। सत्यकी आग भड़कती गयी।

नौकरी खलने लगी, क्योंकि वह नवाबरायको 'सोज़े वतन' लिखनेसे रोकती थी
साहित्य अब तक बहुत प्यारा साथी बन चुका था। उसे छोड़ना भी नामुमकिन था।

फिर संधि की : "लिखना नहीं छूट सकता। उपनाम रखना पड़ेगा। खैर, इस वक
बला टली। मगर मैं सोचता हूँ, अभी यह और रंग लायेगा।"

मुंशी नवाबराय ठीक सोच रहे थे। कलक्टरकी फटकार खाकर नवाबराय सिर झुक
चले आये। मगर नवाबरायकी हारसे विद्रोही प्रेमचंदका सिर तन गया। प्रेमचंद तपता र
और साहित्य के लिये जीवनभर तपस्या की। सरकारी नौकरी छोड़ी, रायबहादुरीका लोभ छो
अलवर रियासतका बँगला और मोटर छोड़ी, फ़िल्मी दुनिया भी उसके आगे न आयी। प्रेमचंद
सिर सदा ऊँचा रहा, और उनके कारण देश और साहित्य का सिर सदा ऊँचा रहेगा।

निजी स्मृतियाँ बड़ी ईमानदारीके साथ साहित्यको देकर माता शिवरानीजीने अप
देश-पूज्य पतिकी आत्माको एक बहुत बड़े लाञ्छनसे मुक्त किया है। जब तक प्रेमचंद जीवित र
लोग यही समझते थे कि वह खुद ही शिवरानीजीके नामसे लिखा करते थे। प्रेमचंद ऐ
ईमानदार आदमीके ऊपर यह बहुत बड़ा लाञ्छन था।

किताब उपन्यासकी तरह रोचक है। कई स्थल तो बड़ी ही खूबीके साथ लिखे गये हैं
पुनरुक्ति दोष है, मगर उसके लिये लेखिकाने पुस्तकके 'दो शब्द' में पहलेसे अपनी मजबूरी जाहि
कर दी है। पुराने लोग हर बातमें विधिका विधान देखा करते थे; कुछ-कुछ उसी तरह कहने
जी चाहता है कि प्रेमचंद ऐसे महापुरुषके संस्मरण लिखनेके लिये ही शायद शिवरानीजी
अपने जीवनमें इतना बड़ा सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

सुनेन जो हम यहि बातँ यहिको निकल गई पाँवन ते धरती
लपकी मा एक आई मूछा पकड़ के रहिगन अपना माथा
कहा किये जो घर मा आयन लड़िकौना का डाँट बतायन
कहेन जो हाँके ऐसी वैसी मरिबा ससुर क दुइ सौ पनही
आँखिन परका चर्बी छाई खाइ खाइके लगी मुटाई
पड़ा सूरमा लाटका बबा जैसे यहै है गाँधी बाबा
लीडर बनेके देखे सपने खेद देहेवँ बस घर ते अपने

टाँई दे हमते बोला छेदम्मा बस बस बहुत न बतुको बन्ना
चहे सुफ़ेदी होए सियाही परण न बदलै अपना सिपाही
नाम ए भारतवर्षके मरिबा जनम सफल यौ अपना करिबा
राज विदेसीकी चौहद्दी बुढ़िया पैरके खूनकी नद्दी
बीर डटे औ कायर भागे घर मा आग लगी तो जागे
गूँजे तन-मन रूम-रूम जै जै जै जननी जन्म-भूमि जै
चुप रहिगे हम मुँड़ झुकाये चले हुवाँ ते खीसैं बाये
समझे आवा दुखका गौना गवा हाय ते बस लड़िकौना
चुप्पे घर ते बाहर आये गाँवके सब पुरखेनका लाये
सेख बफाती, पंचम काका सुलहे, बलदी, पंडित चाचा
सब ही आईके ज़ोर लगाइन ऊँच नीच सब कुछ समझाइन
एककी सिर्री बात न मानिस बदे किहिस जो मन मा ठानिस
काम काज खेतीका छोड़िस हम लोगन ते नाता तोड़िस
झंडा लैके घूमै लागा सोने मा यौ भवा सुहागा
आज हियाँ तो कल वहि नगरी खेत खेत जस डोलै छगरी
नाचत ऐसेन धिधक धीना बीते दद्दुवा सात महीना
यहि दिन हम पर कैसे बीते रामै जानत जैसे बीते
कबहूँ रोयन कब्हू रूसायन कब्हू मेहेरिया का समझायन
लड़िका निकसा ससुर निकम्मा तुइ यहु जान कि मरिगा छेदम्मा
वह यहि बात प डीहैं मारे फिर उलटे हमकै फटकारें
कहे कि तुमका दया न आई बाप नाइ हो तुम हो कसाई
जाननीको पीड़ा पहिचनएउ जनम दियेव होता
गवा लड़िकवा तो का घाटा बचि गा तुमरा
रोवैं सुन हम ठेने वैके चले जाएँ
कामसे खेतीके जी भागे घर बाहर कुछ
अपनो नय्या आप डिबोए फिरा करैं

एक रोज़की सुनो किहानी बर्धनकी
एत्तेम नन्हुवा दौड़त आवा और कहूँ
पकड़ि गये हैं गाँधी बाबा बिगड़ ग
गाँव-गाँव मा गदर मचा है सबके
तोड़ दिहिन सब कोरट दफ़तर आग

है।" (भूमिका)। पर रामविलास तो साफ़ अपने वक्तव्यमें कहते हैं : "कवितामें शाश्वत सत्योंकी मैंने खोजकी हो, यह भी दिलपर हाथ रख कर नहीं कह सकता"। और भारतभूषण अग्रवालके शब्द हैं : "यह बात ज़ोर देकर कहना चाहता हूँ कि कमसे कम मुझे मेरी कविताने भावोंका उत्थान (sublimation) नहीं दिया।" गिरिजाकुमार माथुर का भी पहला वाक्य है : "कवितामें विषयसे अधिक टेकनीकपर ध्यान दिया है।" प्रभाकर माचवे स्पष्ट अपनेको बिम्बवादी कहते हैं; और बिम्बचित्रणमें कविका दायित्व गम्भीर 'अन्वेषण' को कहाँ, कैसे, स्थान देगा ! नेमिचन्द्रके अन्दर एक मानसिक संघर्ष है अवश्य, पर उसे सुलझानेका सही मार्ग उनके शब्दोंमें यही है कि "सामूहिक प्रयत्न द्वारा उनका समाधान" हो—न कि परम तत्वकी शोध। ये भारी शब्द हैं; इस प्रसंगमें आकर अनायास हल्के हो जाते हैं।

अस्तु, कैसी भाव भूमि हमें मिलती है इन कवियोंमें ! गजानन मुक्तिबोध अपनी 'आन्तरिक विनष्ट शान्ति और शारीरिक ध्वंस' के ऊपर 'व्यक्तिवादका कवच' पहने अपने घोर मानसिक द्वन्द्वमें जूझ रहे हैं :

> दिन के बुखार
> रात्रि की मृत्यु
> के बाद हृदयका दुःख नर्क।
>
> दब चुकी जो मर चुकी है आत्मा
> ख़त्म जो हो ही गई आकांक्षा,
> व्यक्तिमें व्यक्तित्वके खँडहर :

आन्तरिक जीवनमें न स्नेह है, न रोष है, न ग्लानि। आत्मामें गर्मी, न मधुरता न आत्म-विश्वास। कवि पूछता है :

> कर सको घृणा
> क्या इतना
> रखते हो अखण्ड तुम प्रेम ?

[illegible] भावनाएँ नकारात्मक हो गयी हैं। मृत्यु और कवि, [illegible], और [illegible] [illegible]—इनके उदाहरण हैं। जीवन आयेगा तो नाशके द्वारा, नाशके बाद। [illegible] वन्दना करता है :

> मेरे सिर पर एक पैर रख
> नाप तीन जग तू असीम बन।

[illegible] 'पूँजीवादी समाजके प्रति' [illegible] है—

> तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ
> तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ

[illegible]

आलो

सात आधुनिक हिन्दी कवि

शमशेर बहादुर सिंह

प्रयोग ही 'तार सप्तक'* का नारा है।

इस दिशामें 'तार सप्तक' की क्या विशेषता है ? एक दम स्पष्ट कहा जाय, तो कोई खास नहीं। कारण इसके दो हैं।

एक तो यह कि मौलिक रूपसे 'तार सप्तक' के प्रयोग अन्यत्र कई और कवियोंके, इनसे काफ़ी पहलेके संग्रहोंमें, मिल जायँगे : प्रथमतः निरालामें ही—न केवल 'तार सप्तक' के लगभग सभी प्रयोग बल्कि उससे भी और कहीं अधिक, कहीं अधिक; दूसरे, पन्तजीने, उनकी अतुकान्त और मुक्तछन्दकी कविताओंमें—लगाकर 'ग्रन्थि' से 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' तक इसको छोड़ते हुए कि उनकी 'ज्योत्स्ना' के कुछ गद्यकाव्यांश वस्तुतः कविताके ही म अंग हैं। फिर, नरेन्द्र शर्माने भी अपनी कतिपय वर्णात्मक तुकान्त मुक्तछन्दकी कविताओंमें अप एक विशिष्ट शैलीका परिचय दिया है (मसलन 'वासनाकी देह' में—पलाशवन), यद्य वह उनकी सामान्य धारा नहीं। उनकी एक कविता 'बटन होल' भी पाठकोंको अपरिचि न होगी।

दूसरा कारण जो 'तार सप्तक' के प्रयोगोंको न्यून करता है, यह कि वे बहुत कम स हुए हैं, सिवाय अज्ञेय और रामविलास के यहाँ। एक सीमित दिशामें गिरिजाकुम प्रयोगोंकी सफलता हिन्दीमें एक सुन्दर चीज़ है, निःसंदेह; पर वास्तवमें वह भी इतनी मौ नहीं जितनी लगती है ऊपरसे देखनेमें। माचवेके बिम्ब-चित्रण कविकी ओरसे काफ़ी दा हीनताका परिचय देते हैं। रामविलासके प्रयोग eclectic हैं—और अधिकांश तो इसी सफल हैं, और कुछ इस कारण, कि कविने प्रयोगोंको 'प्रयोग' के नाते बहुत कम, शायद न के बराबर, महत्त्व दिया है : कविताकी भाव-भूमिने ही स्वयं अपने छन्दोंके उपकरण जुटवा हैं। गजानन मुक्तिबोधकी अभिव्यक्ति उनके कला-प्रकारोंके अनुरूप सक्षम और पुष्ट नहीं है

कविताकी सात दुनियाओंमें रहनेवाले इन सातों पथकारोंमें आपसमें प्रत्येक सम्भव प्र मतभेद है : ये आपसमें सहमत हैं तो केवल इसपर कि कविता प्रयोगका विषय है। सभी 'काव्यके सत्य' के अन्वेषी हैं; "सभी अभी उस परम-तत्त्व की शोधमें ही हैं जिसे पा लेने पर कसौटीकी ज़रूरत नहीं रहती, बल्कि जो कसौटीकी ही कसौटी हो

---

* कविता-संग्रह : संग्रहीत कविगण तथा प्रकाशक : गजानन माधव मुक्तिबोध, ने भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा, 'अ संपादक : 'अज्ञेय'। प्रतीक प्रकाशन के॰ पृ ६२, दिल्ली। मूल्य २॥)

'घाटीके घाटपर' में काफ़ी भावुक वातावरणके बीच कवि-प्रेमीका यह स्नेहपूर्ण अनुनय "मैं भर लूँ हियमें तुझे मीत..." केवल एक कटु-व्यंग बन जाता है जब उसके बाद ये आती हैं—

एकान्त सत्य बहते रहना...
सुधि संबल ले चिर-एकाकी
बस सफ़र-सफ़र......

एक दूसरी कवितामें कवि कहता है :

यह सब एक विराट व्यंग है, मैं हूँ सच, औ चा की प्यालो !

मरघटका दृश्य दिखाकर कापालिक कहता है—

सुन्दर सत्य तुम्हारा, वैसा
यही असुन्दर सत्य हमारा।
परवशता है !...
सिकता, सिकता...केवल सिकता,
किसने पाया है रे 'जीवन' ?...
कापालिक केवल हँसता है।

'बीसवीं सदी' में कविको किसी भी संघर्षमें समाजके नव निर्माणके बीज नहीं दिखते। शिवायतन पूछता है—

जब रूस विश्वके साम्य राज्य
की करता इतनी बड़ी बात
तब भारतमें भी क्यों अनाज
भेजा ? यह तो है सिर्फ़ स्वार्थ !
बीसवीं सदीने यही दिया ?

[illegible]

[illegible]

[illegible]

यह 'हम' जनताका 'हम' नहीं, व्यक्तिका अपने "जाग्रत अतीतसे" प्राप्त 'हम' है
जो कुछ है व्यक्तिके अन्दर है, व्यक्तिके साथ है। इस कवि-व्यक्तिकी समस्याएँ अपने
आ-में जीवन के सभी दृश्य-अदृश्यको घेर लेती हैं। एक उषःकालमें कवि जो कुछ दे
है, उसे लक्ष्य कर कहता है :

> मैं हूँ ये सब, ये सब मुझमें जीवित—
> मेरे कारण अवगत—मेरे चेतनमें अस्तित्व-प्राप्त !

कवि उस सत्य-रूपसे आत्मसात होजाना चाहता है जो उसकी "पुंजीकृत कल्पनाकी स्वर्णू
प्रतिमा" है, जिसे "उर धारे" "दुर्निवार चला जा रहा है कवि युवा निज पथपर"।
"वह छवि, दीप्तियुक्त, छायामय—" कविका "जीवन-कुहासा भेद उगा हुआ तारा"
अपनी दूरीसे इतर सब कुछ वंचना बना देती है। इसीलिये अपने भावुक जगत—आँ
विश्वकी सारी शोभा, सारी शक्ति, सारी ममता कविके अपने "प्राणाधार" के समग्र सन्नि
है—के बाहर उसका स्वर व्यंगपूर्ण और कटु हो जाता है : "कविते ! कुलिश सी कटु ह्रि
"असुर दुर्दम दैत्य-कवि"।

गिरिजाकुमार माथुरकी कविताओंका मुख्य आधार भी प्रेम है—प्रेमकी स्मृति
प्रस्तुत जीवनमें प्रेमके मधुरतम क्षणोंका अतीत। कोमल...एक शब्दमें 'कोमल' ही
भाव-जगतका विशेषण है। भाव, वातावरण, वर्ण, शब्द, स्वर, सब कोमल है। स्पष्ट रेखा
अंकित, चटक रंगोंसे भरे चित्र केवल वे हैं जिनका सम्बन्ध कविके स्वप्नों, उसकी निजी दुनि
नहीं, बल्कि रामायण-महाभारत अथवा प्राचीन इतिहासकी कथाओंसे है। प्रस्तुतके स
स्पष्टता कविको ग्राह्य नहीं; वह उसको अपने काव्यके उपयुक्त नहीं पाता, उसका कवि म
ओर देखता भी नहीं। देखना भी है तो उसको दूर, पीछे, इतिहासमें ले आकर अभिव्यंज
आलम्बनों में।

—क्योंकि उसकी अपनी भावुकताका खजाना भी तो पीछे, अतीतमें ही है :
आज तो कल और परसोंकी स्मृतियाँ मात्र है। आजके हृदयमें तो उदासी है,
है, सूनापन है, खोयी हुई-सी परछाइयाँ हैं, धीमी-धीमी बातोंकी यादें हैं,
अधूरापन है।

क्यों न कविका अन्तर व्यथित होकर कह उठे—

> मैं शुरू हुआ मिटनेकी सीमा-रेखा पर,
> रोने में था आरंभ, किंतु गीतों में मेरा अंत हुआ।...
> मैं एक अधूरी कथा
> कहता का मरण-गीत रोने आया

कवि कहता है कि "है अंत हुआ आना मेरा इन अंतहीन इतिहासों में।"

प्रभाकर माचवे को किसी सत्य पर आस्था, किसी तत्पर विश्वास, [illegible]
लिये आग्रह नहीं। उनकी [illegible] कुछ है तो [illegible]
[illegible] करुणा। क्योंकि उनके शब्दों में है—एक डर और उदासीका भा
चिन्तन ('[illegible]', '[illegible]', 'दृष्टि', '[illegible]') [illegible]
का उद्धरण है, [illegible]। और इसी कारण [illegible]
है [illegible] लिखी है।

तिवारी

तिरस्कृत व्यक्तित्व के
क्षोभ असंगत दर्प ने मन की
सहज अनजान स्वाभाविक अनावृत धार को
कर दिया है कुंठित—......
है नहीं अब शक्ति ही सहयोग की
उन विविध गतिमय प्राणमय
संचलित तत्वों से किसी सम्बन्ध की,
कुछ स्वतः स्फूर्त सजीव विनिमय की—
इसलिये ओ मार्ग-दर्शक
आज मैं बस स्वयं हूँ
सुनसान में निर्जन खड़े ऊँचे महल सा!

कविके जीवनमें व्यर्थताका यह भाव पैदा होना स्वाभाविक है। केवल म
कल्पनाके माध्यमसे ही समाजके प्राणमय तत्वोंसे व्यक्तिका सम्बन्ध कैसे स्था
हो सकता है? अपने चारों ओरके समाजकी समस्याओंको अपनी समस्या बनाकर उसके
को अपने जीवनका संघर्ष बनाकर ही तो हम उसके विविध गतिमय प्राणमय संचलित तत
अपने अन्दर अनुभव कर सकेंगे। वर्ना यों तो कोई भी " सजीव विनिमय " " स्वतःस्फूर्त
होगा। उसकी आशा करना सचमुच अपने आपको स्वयं निर्जन सुनसानमें खड़ा करना
अन्तिम कविता उन्मुक्त में " समताकी सुदूर रेखाओं " और (" जीवनसे वृथा दंभ "
पर) नवयुगके समारम्भ होनेकी बातें हैं। भावोंका सुन्दर आवेश है, रोमांटिक।

भारतभूषणने अपने कवि-कार्यको बड़ी सुगमतासे दो श्रेणियोंमें बाँट दिया है:
जिक-राजनीतिक और भावुक। पहली श्रेणीका पद्य अधिकांश गद्य ही है जिसे छन्दमें
गया है। दूसरी श्रेणीमें कुछ कविता भी आती है। अपने कविसे पढ़ते समय नहीं
होता कि हम उलझा हुआ-सा गद्य पढ़ रहे हैं अथवा पद्य, नीरस, क्लिष्ट। इसी प्रकार
आत्म-स्वीकृति और मसूरीके प्रति हृदयको बिलकुल स्पर्श नहीं करते। कितने ही
तो कविता होनेका संदेह भी नहीं होता। किन्तु पूर्वोक्त 'कविता' के, मसलन, इस अंश, "
जिस परिवारमें मैंने लिया है, जिस तरहकी परिस्थितियोंसे यहाँ तक आ सकी है जि
सकक मेरी, " इत्यादि, की तुलना इन पंक्तियोंसे कीजिये:

फूटा प्रभात, फूटा विहान
छूटे दिनकरके शर, ज्यों छविके वह्नि-बाण
आलोकित जिनसे धरा
प्रस्फुटित पुष्पोंके प्रज्ज्वलित दीप,
लौ भरे सीप

अथवा " अपने गीतोंकी प्रतिमे " को कविके इस सम्बोधन से:—

मैं विस्मित हूँ: आकर्षणका यह लघु अंकुर
किस भाँति आज बन गया अचानक अमर लता...

हम देखते हैं कि कवि अपनी भावनाओंके एक पक्षके प्रति ईमानदार नहीं है। ऐसा
क्यों है? इस दायित्व-हीनताका प्रभाव उसके दूसरे, भावुक पक्ष पर भी पड़ा है। उसकी सि
सम्बन्धी दोनों कविताओं (नं० ९, १०) में भाव अपनी मर्यादा नहीं रख सके हैं। इसने
भावनाओंके प्रसार सत्यका सहारा लिया है, कोरी
अभिव्यक्तिका भी दोष है।

व्यंग काला आदमी में मिलता है और उसी महान कलाकारके अनुरूप नमकहलाल का वीभत्स सामन्ती चित्रण। यशपाल प्रेमचन्दके इंगित किये मार्गका अनुसरण कर रहे हैं। उनकी कलामें अपनी विशेषताएँ हैं। पुलिस की दफ़ा में जो पहाड़ी गाँवका अवसादसे दबा वर्णन है, वह हिन्दी में अन्यत्र कहाँ मिलेगा? रिज़क और छलिया नारी में जो चुटीला व्यंग है, सामाजिक वैषम्यपर तीखा प्रहार है, वह यशपालकी हिन्दी कहानी को अपनी देन है।

किन्तु यशपाल एक अर्थमें अवश्य ही प्रेमचन्दके कलात्मक उत्तराधिकारी हैं। प्रेमचन्द की भाँति ही वे अपने चतुर्दिक् हिलोर मारते संसार पर व्यापक दृष्टि डालते हैं। अपने अन्तस में ही उनकी प्रेरणा घुट घुटकर कुण्ठित नहीं होती।

यशपाल आतंकवाद से समाजवादकी ओर मुड़े हैं। आपका विचार-दर्शन बहिर्मुखी है। आपको बाह्य-जगत् के प्रति आकर्षण है। अतएव दृढ़, सुस्पष्ट रेखाओंमें आप जीवनका चित्र खींचते हैं, चटक, गहरे रंग उस चित्रमें भरते हैं। निर्झर के स्रोत-सी आपकी प्रेरणा की धारा बहती है।

हम एक और आतंकवादी हिन्दी का बरबस ही स्मरण करते हैं। वह भी विचार-जगमें समाजवादकी ओर आकृष्ट हुआ था और अवश्य ही प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार है। उसने हिन्दी को अनेक उच्च कोटिकी रचनाएँ प्रदान की हैं, जो गरिमा में, पच्चीकारी में, नूतन कला-शृंगार में अनमोल हैं। किन्तु वह कलाकार अपने बाहरकी दुनियाको नहीं देख पाता। या तो वह प्रकृति को देखता है, या स्वयं अपनी छायाको। अपने ही स्वरूप में वह संसार को देख सकता है। यह कलाकार 'अज्ञेय' की यही में दुर्निवार पराजय का स्थल है। जो जीवन और हलचल यशपाल की कहानियों में है, वह 'अज्ञेय' की रचनाओंके स्वभावके ही प्रतिकूल है। वहाँ तो एक सामाजिक धुन्ध, कुहासा, एक ही व्यक्तित्वकी अस्ती स्थिर दीपशिखा, पत्थर-सा कठिन, हिम-सदृश जमा अवसाद मिलेगा; लावाके समान सिपरी सामाजिक प्रेरणा सर्वथा दुष्प्राप्य है।

अपनी सामाजिक प्रेरणाके अतिरिक्त यशपाल सफल शिल्पी भी हैं। [illegible] का लोच-लोच पर आप प्रयोग करते हैं। विषय के अनुसार आपकी भाषा शैली भी बदलती है। 'दान धर्म' की भाषा 'काला आदमी' या 'चार आना' से सर्वथा भिन्न है। फिर आपकी कहानियों में काफी तराश और पच्चीकारी है। वह हिन्दीके नये लेखकोंको [illegible] है। किन्तु इस बारीक कारीगरीके पीछे लेखककी महान सामाजिक चेतना है जो उसे एक पल चैन नहीं लेने देती। अन्याय और क्रूर, कटु यथार्थके विरुद्ध वह अपने [illegible] भरपूर प्रयोग करता है। उसका तीखा व्यंग तीरकी भाँति सीधा मर्म पर आघात करता है। [illegible] आडम्बरमें छिपा कर, चिन्तनके आवरणकी ओटमें वह अपना विद्रोह नहीं व्यक्त करता।

'समर्पण' से शुरू होकर ही अभिशाप दलित, [illegible] :

" [illegible] विरुद्ध [illegible] हमें सजीव [illegible] बनाते हैं।

... [illegible] !

[illegible]

[illegible] !

[illegible] हूँ।"

'अभिशाप' की [illegible] है।

२

'अज्ञेय' हिन्दीके [illegible]

[illegible]

प्रकार...

की लोकप्रिय कविताओंमें देखी जा सकती है । इसका आनन्द कुछ पुरानी ही धुन-गुनगुनाकर लिया जा सकता है; और यह इसकी आश्चर्यजनक सहज सफलताका अतिरिक्त प्रमाण है ।

गुरुदेवकी पुण्य भूमि एक सामयिक कविता है; बंगालके अकाल पर । हिन्दीमें इस विषयपर लिखी गयी श्रेष्ठ कविताओंमें इसकी गिनती होगी; 'कविता' से कुछ अधिक है यह चीज : यह देशभक्तोंको एक सच्चे भारतीय कविका आह्वान है । इन्होंने समयकी पुकार है, छन्द और स्वरकी गूँज ही नहीं । यह छापने, पढ़ने, सुननेकी ही चीज नहीं—अपनी कविताके माध्यमसे एक सच्चा कवि राष्ट्रको कर्तव्य-पथ पर ललकार रहा है । इस रचनामें भी कविकी कला भावोंके क्रमशः उठानमें, एक ' कलायमेरस ' तक पहुँचानेमें है । आंशिक उद्धरण पूरी कविताके प्रति अन्याय होगा ।

अन्य कविताओंमें मुख्य कवि, दारा-शिकोह, किसान कवि और उसका पुत्र, तथा हड्डियोंका ताप, कलियुग, आदि, मुक्तछन्दके मार्मिक पद्य हैं जो प्रयोगसे बढ़कर कविता भी है । कवि में पदोंकी गम्भीर संयत गति, विशेषणों और उपमाओंका सुन्दर हुआ मार्मिक प्रयोग, प्रत्येक स्टेंजामें भाव-भूमिको लेकर सहज कुशलतासे वातावरणका कलात्मक परिवर्तन और फिर उसी आधुनिक कवि-कुल-गुरुकी संस्कृतमयी सार-गर्भित शैलीमें उसीके भाव-धाराके अनुरूप, उसीकी कल्पनासे चमत्कार उधार लेते हुए उसीके समक्ष योग्य रूपमें यह सुन्दर काव्य-निवेदन समर्पित है जिसको इस कवितामें सम्बोधन किया गया है । हम सब जानते हैं कि वह—निरालाजी हैं । किसान कवि और उसका पुत्र स्पष्ट ही स्व. श्री बलभद्र और बुद्धिभद्रजी दीक्षितकी स्मृतिमें व्यक्त करुण उद्गार हैं जो बहुत मार्मिक प्रकृति-चित्रण की पृष्ठभूमिमें प्रकट हुए हैं, जिनके कारण यह निधनता और भी करुणोत्पादक हो जाती है, किन्तु कविका स्वस्थ दृष्टिकोण उसे चेताता है :

> बँध न सकेगा लघु सीमाओं में लघु जीवन
> लघु जीवन से अमर बनेगा बहु-जन-जीवन ।
> आज यही विश्वास, क्षुद्र है जीवन चंचल;
> अनजानी है राह; यही साहस है संबल ।
> यह मानव का हृदय क्षुद्र इस्पात नहीं है ।
> भयसे सिहर उठे वह तरुका पात नहीं है ।

घन की चोट और कलाकार

प्रकाशचन्द्र गुप्त

१

' अभिशप्त ' * यशपाल का पाँचवा कहानी-संग्रह है जो हिन्दी पाठकों का ध्यान अपनी ओर खींचता है । ' पिंजरेकी उड़ान ' और ' ज्ञानदान ' हिन्दी साहित्यमें अपना स्थान बना चुके हैं ।

यशपाल की सर्वभेदिनी दृष्टि भारतीय समाजके अनेक पर्तोंका रहस्य खोलती है। प्राचीन भारतका समाज-विधान, विलास और शोषण; ग्रामीण समाजका खो-हारा खोखलापन; शिक्षित वर्गकी लालसाएँ और पराजय; अन्न-चोरोंके कुचक्र और अत्याचार की अनेकानेक कुरीतियाँ और असंगतियाँ कलाकारकी अन्तर्दृष्टि आर-पार बेधती है।

* अभिशप्त—लेखक, यशपाल । प्रकाशक, विप्लव कार्यालय, लखनऊ । मूल्य

कुछ मसाला पुराना है, प्रकाशमें अब आ रहा है। फिर भी आज-कल अच्छे कोटिका साहित्य इतना कम निकल रहा है कि 'अज्ञेय' के प्रकाशन शुभ साहित्यिक घटनाएँ हैं। पिछले कुछ वर्षोंमें आपने 'शेखर' 'तार-सप्तक' 'परम्परा' और अन्य निबन्ध तथा कहानी संग्रह निकाले हैं।

'परंपरा' • आपका दूसरा कहानी-संग्रह है। एक तीसरा संग्रह भी प्रकाशित हो है। 'अज्ञेय' की कहानी कलामें कुछ विशेष आता है। दर्शन, काव्य, विचार और कल्पना मिलन-भूमि पर इन कहानियोंका जन्म हुआ है। यह कहानियाँ जीवनकी विश्लेषणात्मक देती है—'अज्ञेय' की आत्मामें प्रतिबिंबित, चित्र-विचित्र जीवन। एक ही चित्र हम देखते हैं, अथवा एक ही चित्रके भिन्न भिन्न रूप। चाहे मानवका चित्रण 'अज्ञेय' कर रहे चाहे प्रकृतिका, स्वयं उन्हींके रंगमें रँग कर चित्र पाठकके सामने आता है :—

"यदि मैं अपने को विश्वास दिला सकता कि मैं जो लिख रहा हूँ, जो निर्माण कर र हूँ, वह कला की वस्तु है और इसलिये मेरे व्यक्तिगत जीवन से अलग है, तब शायद मैं सकता। पर यह झूठ है, मैं जानता हूँ वह झूठ है! यह कला नहीं है, यह सार्वलौकिक नहीं है; यह है मेरी घोर व्यक्तिगत व्यथा, जिसे दुबारा भुगतकर मैं चाह रहा हूँ भू जिला लेना, एक धुँधले चित्रमें नयी दीप्ति और नया जीवन डाल देना। यह जानते हुए कि चेष्टा है व्यर्थ!" ['मंसो', पृष्ट ६७]

एक हद तक सभी कला व्यक्तिगत अनुभूतिकी सृष्टि है। जीवनको अपनी अनुभू तपाकर ही कलाके साँचेमें कलाकार उसे ढालता है। किन्तु 'अज्ञेय' की दृष्टि मानो बाहर ही नहीं; वह गर्भधारिणी माताके समान अन्दर ही घूमती है :

"तब एक दिन जब प्रकाश हुआ, तो स्त्रीने आँख नीची कर लीं, पुरुषकी ओर नहीं दे पुरुषने आँख मिलानेकी कोशिश की, तो पाया कि स्त्री केवल उसीकी ओर न देख रही ऐसा नहीं है, वह किसीकी ओर भी नहीं देख रही है; उसकी दृष्टि मानो अन्तर्मुखी हो ग अपने भीतर ही कुछ देख रही है और उसी दर्शनमें एक अनिर्वचनीय तन्मयता पा रही है

['जिज्ञासा', पृष्ट

इसी कारण मानो 'अज्ञेय' की प्रेरणा शाश्वत और सनातन को खोजती है, मार्ग उपाख्यानोंकी तरह कलाको रूप देती है, "सूक्ति और भाष्य" की शरण लेती है; जीवनको अपरिवर्तित 'परम्परा' के रूप में देखती है। आज और कलके संघर्षका अनुभव इन कहानियोंमें नहीं मिलता। शून्यमें खेले हुए किसी विराट मानवी काल्पनिक इतिहास यह कहानियाँ हैं। दार्शनिक भाषा में 'अज्ञेय' विचारवादी है। विचा परछाई ही वह जीवन में पाते हैं। उन्होंने जीवनको ग्रहण नहीं किया, जीवन ही व्यक्तित्व —— —— है।

•:

किया है

है। आप

विचार-द

या गति

•

बानवे

[illegible] 'मुंबई' [illegible] (गुजराती) [illegible] (गुजराती) [illegible] 'मुंबई' [illegible] हुआ। [illegible] हो चुके हैं।

इन नाटकोंके अतिरिक्त [illegible] मजदूर-कलाकारोंने एक [illegible] तैयार [illegible] (इसके [illegible]) [illegible] तैयार की। [illegible] 'नवान्न' [illegible] हैं, किन्तु [illegible] मजदूरों और किसानोंके [illegible] जन-नाट्य संघके मजदूर-दलने [illegible] हड़ताल, [illegible] (बम्बईके मजदूरों [illegible]) के विभिन्न आन्दोलनोंमें मदद देनेके लिये, [illegible] किसानोंको [illegible] परिचित करानेके लिये किया।

जनवरी १९४५ में बम्बई जन-नाट्य संघका पहला सम्मेलन हुआ। पाँच दिन तक [illegible] विद्यालय भवन, सर कावसजी जहाँगीर हालमें नाटक, नृत्य, गीतों, बच्चोंके खेल, [illegible] कार्यक्रम चला। यह एक अद्भुत समारोह था जिससे पता लगा कि जन-नाट्य संघने इतने थोड़े दिनोंमें कितनी सफलता हासिल कर ली थी। उसके बादसे बम्बईके सांस्कृतिक जीवनमें न केवल जन-नाट्य संघका स्थायी स्थान बन गया बल्कि उसका प्रमुख स्थान बन गया, और अब शायद ही कोई ऐसा सप्ताह बीतता हो जिसमें उसका कोई न कोई कार्यक्रम जनताके सामने न पेश किया जाता हो। बम्बई जन-नाट्य संघके सदस्योंमें बम्बईके प्रगतिशील बुद्धिजीवियों, और मजदूर वर्गके [illegible] और प्रतिभाशाली युवक और युवतियोंके अलावा पृथ्वीराज, जयराज, वोहरा जैसे प्रसिद्ध अभिनेता और अभिनेत्रियाँ भी हैं। हिन्दी, उर्दू, गुजराती, मराठी, कानडी और अंग्रेजीके [illegible] प्रगतिशील लेखकोंके अतिरिक्त चन्द्रवदन मेहता, दर्शनदास मानिक, मामा वरेरकर जैसे प्रसिद्ध लेखकोंका भी समर्थन और सहयोग उसे प्राप्त है।

बंगालमें तो लगभग पूरा बुद्धिजीवी वर्ग जो देशके साहित्य और संस्कृतिसे प्रेम करता है, जन-नाट्य आन्दोलनमें आगया है। ताराशंकर बनर्जी, बंगलाके सबसे बड़े उपन्यास लेखक, मानिक बनर्जी, मनोरंजन भट्टाचार्य, विश्वनाथ भादुरी, शचीन देव बर्मन, [illegible] विश्वास, [illegible] प्रसाद मुकर्जी, ये सब जन-नाट्य संघके काममें योग देते हैं। नयी पीढ़ीके लेखकों और कलाकारोंका तो कहना ही क्या। बंगाल जन-नाट्य संघके उन्होंने बंगालकी दुखी जनताकी बहुत बड़ी सेवा की है। राममनोहर राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और रवि ठाकुरके देशमें जिस समय बेईमानी, फूट, अनैतिकता, चोरबाजारी, घूसखोरी, शरीर जिस-विक्रय, अकाल, महामारीका दौर-दौरा था, बाहर और अन्दर दोनों तरफसे बंगालका जीवन संकटाकीर्ण था, उस समय जन-नाट्य संघने उसके अविजित निवासियोंके अन्दर स्वावलम्बन, और आत्म-विश्वासकी उदात्त भावनाएँ भरीं; आशा और उज्ज्वल भविष्यका उन्हें सन्देश दिया; और उनके मनोबलको ऊँचा रखनेका प्रयत्न किया। 'होमियोपैथी' (ले० मनोरंजन भट्टाचार्य), 'अन्तिम अभिलाषा' और 'जबान बन्दी' नाटकोंने और नये-नये गीतों और नृत्यों द्वारा बंगालकी जनताको उसका पथ दिखलानेकी उसने विनम्र चेष्टा की। वे

और १२ नृत्य दिखलाये। उनकी विविधताका अन्दाजा उनके नामोंसे मिल जाता है। उनके नाटकोंके नाम ये थे: 'आजका सवाल,' 'स्वतंत्रता-संग्राम,' 'नाज चोर,' 'मई दिवस,' 'सुनो कौन ?' 'भूखकी ज्वाला,' 'मजदूर,' 'कफन चोर,' और '२५ जून सन् ४५'। नाट्य नृत्योंके विषय: 'बंगालका अकाल,' 'मजदूरकी आत्मा,' 'किसान अन्नदाता,' 'एकताकी आवाज' 'लोहेकी दीवार,' और 'अंगारा।' नृत्य: 'जनता और साम्राज्यवाद,' 'भील,' 'धोबी,' 'त्यौहार,' 'भूख,' 'खलिहान,' 'यशोधारा,' और 'सिद्धार्थ,' 'जटायु और रावन,' 'आकालके पूर्व बंगाल,' 'आह्वान,' 'विदेशी,' तथा 'आषाढ़'। इनके अतिरिक्त अनेक गीतों की भी रचना की गयी। इन नाटकों, नृत्यों आदिको प्रदर्शन आगरा, फ़ीरोजाबाद, टूंडला, अलीगढ़ हाथरस, फर्रुखाबाद, मैनपुरी, इटवामें बकेवर, बुन्देलखन्डमें एरच, आदि प्रान्तके विभिन्न स्थानोंमें सर्वसाधारण जनता और विशेषकर मजदूरों-किसानोंके सन्मुख हुए। कुल मिला कर डेढ़-दो लाख आदमियोंने उन्हें देखा।

दिल्लीमें जन-नाट्य संघके कार्यकी सफलता का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि पिछले डेढ़ वर्षमें उसकी ओरसे लगभग १५-१६ बड़े-बड़े कार्यक्रम दिल्लीके निवासियोंके सामने उपस्थित किये जा चुके हैं। कार्यक्रमोंके दर्शकोंकी संख्या हजार पाँच-छः सौ से लेकर बीस हजार तक रही है। दिल्ली जन-नाट्य संघके अध्यक्ष दिल्लीके प्रसिद्ध लेखक जैनेन्द्रजी हैं। संघको दिल्लीके बड़े-से बड़े कलाकारोंका पूर्ण सहयोग है। नृत्यकार उदयशंकरके भाई श्रीयुत देवेन्द्र शंकर जो स्वयं एक उच्च कोटिके कलाकार हैं, संघके प्रमुख सहायक हैं। उदयशंकरकी भूतपूर्व नृत्य मंडलीकी रानी फ्रान्सीसी नर्तकी सिमकी और उनके पति प्रभात गांगुली संघके कार्य-संचालनमें योग देते हैं। दिल्ली जन-नाट्य संघकी ओरसे पिछले कुछ महीनोंमें जो प्रदर्शन किये गये है उनका संक्षिप्त विवरण यह है:

७ नवम्बर, ४३ को दिल्लीके प्रसिद्ध मैदान गांधी ग्राउण्ड्समें बारह हजार नर-नारियोंकी उपस्थितिमें जन-नाट्य संघकी ओरसे बंगालके अकाल पर एक मूक अभिनय दिखलाया गया। १७ नवम्बरको पूजाके अवसर पर एक नाट्य-नृत्य राष्ट्रीय एकताके सम्बन्धमें प्रदर्शित किया गया। केन्द्रीय असेम्बलीके सदस्य मि. अब्दुल क़यूमने अध्यक्षपदसे बोलते हुए जन-नाट्य संघके कार्यकी प्रशंसा की। १२ दिसम्बरको, कलकत्तेपर जापानी बमबारीके बाद, जापानी वादोंकी खिल्ली उड़ादी गयी थी। सम्बन्धमें एक प्रहसन उपस्थित किया गया। इसमें जापानी वादोंकी खिल्ली उड़ादी गयी जिनका १२ जनवरी, ४४ को तीन हजार स्त्रियोंकी उपस्थितिमें एक नाटिका दिखलायी गयी जिसका नाम था 'ओ! मेरे देशवासियो, सुनो'। २३ जनवरीको प्रान्तीय कम्युनिस्ट पार्टीके अधिवेशनके अवसरपर पार्टीकी ओरसे आमंत्रित किये जाने पर संघने अपने गीतों और नृत्योंका प्रोग्राम दिखाया जिसे बीस हजार आदमियोंने देखा। ८ मार्चको अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस मनानेके लिये संघने पाँच हजार स्त्रियोंके सामने एक बड़ा शो दिया। श्रीमती रामाराव स्वागत सभाकी अध्यक्षा थीं। इस दिनके शोमें संघके कार्यकर्ताओंने छायाओंकी मदद बालिका तान्याकी फाँसीका दृश्य बहुत ही प्रभावशाली ढंगसे उपस्थित कि '४४ को कठपुतलियोंके नृत्य और पर्दिगके द्वारा मई दिवसका इतिहास परदे ७ अगस्त '४४ को रवि ठाकुरकी बरसी धूमधामसे मनाई गयी। २१ अक्टूबर ट्रेड यूनियन कांग्रेसके प्रधान मंत्री श्रीयुत एन. एम. जोशीके संरक्षण मनाया गया। प्रदर्शनको देखनेके लिये आठ हजार मजदूर मौ जब संघने फिर अपना कार्यक्रम उपस्थित किया तो कांग्रेसी एम. एल. आकर मीटिंगका सभापतित्व किया। ९ नवम्बरको संघने फिर एक श्रीमती सरोजिनी नायडूने इस शोका उद्घाटन किया। इस प्रक कार्यकर्ता यद्यपि अभी तक गांवोंकी ओर नहीं जा सके हैं तब भी

शिरोंमें सांस्कृतिक दल बन गये हैं जो अलग-अलग काम करते हैं। और लाहौरमें तो जनता और विशेष कर मजदूर वर्ग और निम्न स्तरके गरीब लोगोंकी काफ़ी सेवा की है।

पंजाबमें भी संघका कार्य अभी तक केन्द्रित रूपसे नहीं हो रहा है। फिर भी प्रान्तके कई दलके कार्यकर्ताओंका एक ख़ासा बड़ा दल बन गया है। पिछले स्वतंत्रता दिवसके अवसर पर इस दलने अपना कार्यक्रम पेश किया था। कार्यक्रममें ग्रामीण लयोंकी ध्वनिमें गाये गये गीतोंके अलावा 'झूमर' नामका ग्रामीण नृत्य और 'चना जोर गरम' के नामसे एक प्रहसन भी दिखलाये गये थे।

लेकिन इस आन्दोलन का सबसे अधिक विस्तार सम्भवतः आंध्र देशमें हुआ है।

आंध्रमें १९४४ में केवल बुर्रकथा के ३७५ प्रदर्शन संगठित किये गये, जिन्हें ६ लाखसे ऊपर नर नारियोंने देखा। हरि कथा के ५ जमाव हुए जिनमें लगभग साढ़े दस हजार आदमियोंने भाग लिया। नाटकों में 'पश्चाताप' नामक ड्रामा २५ ग्रामीण केन्द्रोंमें दिखलाया गया। १५,००० आदमियोंने देखा। 'प्रतिमा' में बंगाल के अकालका करुण चित्रण था। जन नाट्य पिचय्या और कोदण्ड रमय्या ने मिलकर उसे लिखा था। पिचय्या और रमय्याकी गिनती आंध्रके श्रेष्ठ लेखकोंमें होती है। उनके इस नाटककी लोकप्रियता का अन्दाज इससे हो सकता है कि इसे १५० केन्द्रोंमें लगभग ढाई लाख स्त्री-पुरुषोंने देखा। "मभूमि" (बादलों की छाया) नामक नाटक में उसके लेखक महीन्द्र राममोहन रायने एकताका सन्देश दिया था। यह नाटक तीन स्थानोंपर खेला गया, लगभग ५,००० व्यक्तियोंने देखा। 'परिश्रम' (समाधान) का विषय भी राष्ट्रीय एकता है। इसके लेखक भी राममोहन राय हैं। इसे दो बार ४,००० लोगोंके सामने दिखाया गया।

इन मौलिक नये नाटकोंके अतिरिक्त १० केन्द्रोंमें 'की' (एक रूसी नाटकका अनुवाद) तथा 'देशभक्त' और "पुनर्मिलन" (चीनी नाटकोंके अनुवाद) १५,००० की उपस्थितिमें प्रस्तुत किये गये। पुराने सामाजिक नाटकोंमेंसे 'कन्या शुल्कम' (दहेज प्रथा की कुप्रथा पर) और 'वीरा विक्रयम' अब भी लोकप्रिय हैं और जन-नाट्य संघके मंचसे अलग-अलग खेले गये हैं।

ये नाटक अथवा सबके अन्य प्रदर्शन किसी एक केन्द्रीय दल [illegible] प्रस्तुत किये जाते। [illegible] अलग-अलग [illegible] की इन विभिन्न कार्यक्रमोंका आयोजन करती है। [illegible] आमन्त्रित करती है। [illegible]

[illegible]

तरहसे निर्माण करके, उसमें बाँसों और कुछ मिट्टीके कोरी-मुखा बर्तनोंका इस्तेमाल क इस समस्याका बहुत ही सस्ता और आसान हल ढूँढ निकाला है। मंच पर बैठे गये इन मिट्टीके बर्तनोंमें प्रवेश करके प्रतिध्वनि उत्पन्न करते हैं और कई गुना अधिक जोरदार हो दूर दूर तक फैल जाते हैं। जनताकी पहल-शक्तिका यह उत्कृष्ट उदाहरण है।

• • • •

किन्तु इन सब प्रान्तीय शाखाओंसे भी अधिक कार्य संघके केन्द्रीय दलने किया है। केन्द्रीय दलमें इस समय देशके कुछ सर्वोत्तम कलाकार मौजूद हैं। शान्ति वर्धन, अवनीश गुप्ता, शचीन शंकर (उदय शंकरके चचेरे भाई), रवीन्द्र शंकर (उदय शंकरके भाई), नरेन्द्र शर्मा (उदय शंकर केन्द्रके श्रेष्ठ विद्यार्थी) आदि नृत्य और संगीत कलामें पूर्ण रूपसे दक्ष कलाकारोंके अतिरिक्त लगभग २५-३० और नौसिखिये तरुण और तरुणियाँ हैं, जिन्हें देशप्रेम और जन-सेवाकी उत्कट अभिलाषा इस क्षेत्रमें खींच लायी है। ये नौजवान कलाकार पहले किसान, मजदूर, विद्यार्थी या महिला संघोंमें काम करते थे।

संघके केन्द्रीय दलने पिछले डेढ़ सालमें अकथनीय उन्नतिकी है। पिछले वर्ष उसने पंजाब, बम्बई, गुजरात, और महाराष्ट्रका दौरा करके हजारों रुपये बंगालकी सहायतार्थ इकट्ठे किये थे। तमाम समाचारपत्रों और स्थानीय कलाकारोंने दलके प्रोग्रामकी प्रशंसा की। श्रीमती सरोजिनी नायडू, विजयलक्ष्मी पंडित, श्रीयुत भूलाभाई देसाई, डा. महमूद, आदि ने आकर आशीर्वाद दिया। अपने प्रदर्शनोंके द्वारा नाट्य संघ ने अबतक दो लाख रुपया इकट्ठा करके बंगाल, बीजापुर रायलसीमा (केरल) की दुखी जनता और आष्टी-चिमूरके बन्दियोंकी सहायतार्थ भेजे हैं।

अपने नाट्य नृत्यों, नृत्यों, गीतों और अभिनयोंके द्वारा संघके केन्द्रीय सांस्कृतिक दलने देशके कला-जगतमें सर्वथा नये स्टैण्डर्ड की स्थापनाकी है, नये मूल्योंका परिचय कराया है। 'भारतकी आत्मा' नामक उसका प्रसिद्ध नाट्य-नृत्य भारतीय नृत्य कलाकी एक अपूर्व कृति है जिसने इन अबतक किये गये सब प्रयासोंको कोसों पीछे छोड़ दिया है। प्रदर्शनके ३५ मिनटोंमें देशका पिछले दो-सौ वर्षोंकी गुलामीका इतिहास आपकी नजरके सामनेसे गुजर जाता है। करुणा, टीस, दर्द, असहायता, परवशता और क्रोध की लहरियों पर ऊबते-डूबते हुए अन्तमें आप फूटती हुई सुबह की हल्की-हल्की किरणें देखने लगते हैं। यह सुबह एकता और आजादीकी होगी। 'नगाड़ेके नृत्य' के दृश्यकी उठान देखनेही योग्य है। देश, रक्षा और आजादीके लिये आह्वान करनेवाली नगाड़ेपर लगती टंकारोंके साथ-साथ मालूम होता है कि आपका पूरा देश उठकर आगे बढ़ रहा है। इस तरहकी कलाकी कल्पना देशके राजनीतिक और सामाजिक इतिहासको समझे बिना असम्भव है। इस कलाके लिये कला और देशप्रेमका उत्कृष्ट सम्मिश्रण आवश्यक है।

इस वर्ष जनवरीमें केन्द्रीय दल बंगाल गया था। वहाँ उसके लगभग ३० प्रदर्शन दिये गये। बंगालके तमाम कलाकारों और कला-प्रिय जनताने दलका अभिनन्दन किया। और अ अखिल भारतीय जन-नाट्य संघका केन्द्र ही देशका एकमात्र सांस्कृतिक केन्द्र रह गया है भारतीय नाट्य और नृत्य कलाओंके उद्धार और प्रसारके लिये प्रयत्नशील है। बाकी सब केन्द्र या तो आपसी झगड़ोंकी वजहसे या आर्थिक कठिनाइयोंके कारण टूट गये। आज बड़ेसे ब कलाकार जिनमें देशका या अपनी कलाका प्रेम है, जन-नाट्य संघकी ओर आकर्षित हो र है, और आराम और ऐश्वर्यकी जिन्दगीको छोड़कर साधारण मजदूर किसान कार्यकर्ताओं की तरह अल्प और नियत पारिश्रमिक पर दृढ़ अनुशासनके नीचे काम करनेके लिये आ रहे हैं। यह जन नाट्य संघके उज्वलतर भविष्यका सूचक है।

हिन्दीके राष्ट्रीय महाकवि श्री मैथिलीशरण गुप्तकी हीरक जयन्ती

आधुनिक हिन्दी कवियोंके अग्रज और आचार्य द्विवेदी द्वारा अनुशासित युगके कवियोंमें ग्रणी, बाबू मैथिलीशरण गुप्तकी हीरक-जयन्तीके अवसर पर हमारी हार्दिक शुभ कामनायें, कि हाकवि शतायु हों और दिन दिन वह देश और राष्ट्रकी सेवामें और पूर्ववत संलग्न रहें।

भारतेन्दु भारत-दुर्दशाकी ओर हिन्दी कवियोंका ध्यान आकर्षित करा चुके थे, किन्तु नकी वाणीको बल मिला 'भारत-भारती' में। राम और बुद्ध जैसे महापुरुषोंके चरितका गान रने वाले महाकविने नारीको रीति-कालीन कवियों द्वारा किए गये असम्मानसे उबारा और र्मिला और यशोधराके रूपमें नारीकी महत्ताको मूर्तिमान किया। यही नहीं, नहुषके रूपमें विने देवोंके मुकाबिले मनुष्यको समादृत किया। 'भारत-भारती', 'साकेत', 'यशोधरा' था अनेक काव्य-ग्रन्थोंके प्रणेता इस महाकविका हम अभिनन्दन करते हैं और आशा करते हैं के उनसे प्रेरणाप्राप्त हमारे आधुनिक कवि हिन्दी काव्य-साहित्यकी परम्पराको और भी आगे ढ़ाकर बाबू मैथिलीशरण गुप्तके स्वप्नोंको सत्य बनायेंगे।

★★★

सब्ज़ बाग़

सिनेमा आया। दिमाग के हजार परदोंमें घुस-घुस कर बैठने वाले मजदूरों का हयात
की महफ़िलमें मनमुताबिक नचानेके लिये उसके पास साजो-सामान जुट गये। लेकिन, क
खर्च वाला-नहीं; स्क्रीन पर हीरोइनसे इश्क लड़ाते हुए हीरोके रूपमें दुखवार वह अपने
देख-देख कर मौज लूट लेता है। इससे वह अपनेमें ताज़गी महसूस करता है, जो मैं ताज़ा
लेकिन बीवीका रातमें रंग-महलको कोप-भवन बना देना उसे अखरता है। हार कर वह क
बीवीको भी उसी सब्ज़ बाग़में लेजाना चाहता है। पुराने ज़मानेके बन्धन उस वक्त भी दि
जा रहे थे। चूँकि माँ-बाप और बुजुर्गोंके सामने अकेले बीवी को लेकर घूमने जाना बुरा
इसलिये भाई-बहन, भावज वगैराको भी साथ लेजाना ज़रूरी होता है। अम्मा नहीं जाती;
जब संत तुलसीदास और नरसी भगत भी ' परतच्छ दरसन ' देने लगे, जहाँगीर और दि
दीखे, तो अम्मा भी जाने लगीं।

फिर तो घर-घरमें सिनेमाकी ही रामायण बाँची जाने लगी। घरमें तीन तीन च
बरसके बच्चे-बच्चियाँ ' तिरछी निगाहोंके तीर मेरे कारी है, बचके रहो!' की आवाज़ क
घूमते हैं, हुस्नके हुज़ूरमें अपना सर झुकाये हुए घूमते हैं और उनके माँ-बाप
कर खुश होते हैं; पड़ोसियों के सामने नुमायश करते हैं। अपने बचपनमें
हुस्नके हुज़ूरमें सर झुकाना नहीं सीखा था। अगर उन्हें इन बच्चोंके जैसा सुनहरी मौ
होता तो वे अब तक हुस्नके हुज़ूरमें अपना सर पूरी तरह झुका कर अबतक उसके शह
चुके होते। खैर, अब खुद नहीं तो ये बच्चे नाम कमायेंगे! जुग बीत गये, कोई लैला
रोमियो-जूलियटकी तरह मशहूर नहीं हुआ। हिन्दुस्तानके हर बाबूका बच्चा कर
जूलियटकी तरह हिस्ट्रीमें मशहूर होगा, और उनके माँ-बापकी हैसियतसे उनका
बहुत नाम होगा ही।

२

सब्ज़बाग़ने हिन्दुस्तानकी तमाम शहरी आबादीको सावनका अंधा बनाकर, द
गाँवोंमें भी अपना सब्ज़ क़दम रक्खा।

दिल और दिमाग सब्ज़बाग़में क़ैद; दुनियामें लड़ाई छिड़ी हुई। नोट बद'
हवा हो गयी। रुपयेका नोट लेकर जाओ तो सिनेमाका बुकिंग-क्लर्क कहता है,
जाओ!' भूखा पेट अनाज माँगने लगा, नंगा तन कपड़े माँगने लगा।

इज़्ज़तदार बाबू किसीको भी कुछ नहीं दे सकता। मजबूरी उसका दम घुटा रही है।
दिखी दिलमें रो रहा है।

इसीलिये सिनेमामें अब वह देवदास, चण्डीदास, मनमोहन और विद्यापति देखना प
नहीं करता, वह सिनेमामें प्रेमके लिये रोना पसन्द नहीं करता। पहले वास्तविक जीवनमें
कम था, इसलिये प्रेमपर आँसू खर्च करनेमें एक मज़ा आता था। अब हर तरफ़से आँसू
धमकी देना शुरू कर दिया है, लिहाज़ा बाबू उनसे चिढ़ता है।

बॉम्बे टॉकीज़के ' कंगन ', ' बंधन ', ' नयासंसार ', ' झूला ', और ' क़िस्मत ' दे
ज़मानेमें दिखाये गये और बेहद पसन्द किये जाने लगे। नाच, गाने, हीरो-हीरोइनकी छेड़
हँसी-मज़ाक़।—बाबू खुश हो गया, बाबूका घर भर खुश हो गया। सिनेमा हॉलने गुज़रे
दो ढाई घंटे ज़िन्दगीमें नया रस ले आते थे। रिश्वतोंकी खुशियाँ मनायी जाने लगीं।

दूसरे प्रोड्यूसरोंने थोड़ी कसमें देखी तो बॉम्बे टॉकीज़का नुस्खा माना। दो नाच
झूलने, एक हीरोका सुन्दर चेहरा, एक हीरोइनका; फिर एक-एक धम और बेह
[illegible] एक काम [illegible] [illegible]; और [illegible] [illegible] शानमें ही :"

नागरी प्रचारिणी सभा : एक परिचय

अभिमन्यु

१

हिन्दीके वर्तमान पद और गौरवके लिये देशकी जिन संस्थाओंने काम किया है, उनमें काशी
नागरी प्रचारिणी सभाका स्थान सबसे आगे है। काशी नागरी प्रचारिणी सभाकी स्थापना सन्
१८९३ में हुई थी। यह वह समय था जब १९५७ के असफल विद्रोहके लगभग दो पीढ़ी बाद
हमारा देश फिर सिर उठा रहा था। १८८५ में राष्ट्रीय कांग्रेस बनी थी। राष्ट्रीय जीवनके
प्रत्येक क्षेत्रमें एक नयी चेतना आ रही थी। हिन्दी साहित्यके क्षेत्रमें इस व्यापक जाग्रतिके
प्रतिनिधि स्व० भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा भारतेन्दु युगके अन्य गद्य और पद्यकार थे जिनकी
रचनाओंके अप्रतिम ओज, प्रवाह और ठेठपन पर आज भी हम गर्व करते हैं।

नागरी प्रचारिणी सभाकी स्थापनाकी प्रेरणा स्वयं भारतेन्दुजीसे मिली थी। भारतेन्दु
कट्टर राष्ट्रवादी थे; भारतसे ब्रिटिश सरकारकी जितनी कटु और तीव्र और व्यंग्यमय आलोच
उन्होंने की उतनी शायद ही किसी अन्य मृत या जीवित साहित्यिक ने की हो। भाषा
साहित्य उनके लिये राष्ट्रीयताके प्रचारके साधन अगर नहीं थे तो कुछ भी नहीं थे। हिन्दी
लिये स्वाधीनताकी और ब्रिटिश-विरोधकी नयी भावनाके प्रचारका सर्वोत्कृष्ट वाहन थी, इसी
उसके उन्नयन और विकासके लिये उन्होंने अपनी लाखोंकी सम्पत्ति निहायत फक्कड़पनेसे फूंक

उनकी मृत्युके आठ वर्ष बाद मार्च १८९३ में उन्हींकी रचनाओंसे अनुप्राणित
क्वींस कालेजियट आठवें-नवें दर्जेके कुछ विद्यार्थियोंने नागरी प्रचारिणी सभा की नींव
उद्देश्य हिन्दीकी उन्नति और प्रचार था। सर्वश्री गोपाल प्रसादजी और राम नारायणजी
प्रयत्नोंसे जुलाईमें सभाकी विस्तारित बैठक हुई जिसमें नियमादि बनाये गये और श्री
सुन्दरदास मंत्री नियुक्त हुए। ये सब सज्जन उस समय स्कूल-कालेजमें पढ़ते थे।

सभाका आरम्भ किस छोटे पैमानेपर हुआ था यह इस बातसे [illegible] हो जा
स्थापनाके समय उसकी कुल पूंजी एक रुपया चौदह आना थी और [illegible] गया थ
" मंत्री बिना प्रबन्धकर्तृणी सभाकी आज्ञाके दो आना खर्च कर

डा० श्यामसुन्दर दास, पं० राम
अन्य हिन्दी भाषा-प्रेमियोंके सद्प्रयत्नों
वर्षोंके अपने इतिहासमें राष्ट्र और ह
समय तमाम सरकारी दफ्तरों
न समझती थी, न बोलती थी, न
था। इसलिये जनताकी उन्नति औ
विकासकी और सामाजिक जीव

एकसौ छः

सभाने हिन्दीके प्रचारका बीड़ा उठाया। हजारों आदमियोंके दस्तखत कराके अर्जियाँ दीं। उसने ६०,००० हस्ताक्षर इकट्ठे किये थे। उसके अनवरत उद्योगसे सन् १९०० से युक्त प्रान्तकी कचहरियों, दफ्तरों आदिमें (विशेष रूपसे माल विभागमें) हिन्दीको स्थान मिलने लगा; स्कूलों, कालेजों, और विश्वविद्यालयोंमें भी हिन्दीका अध्यापन होने लगा। हिन्दीको सुगम, लोकप्रिय और अन्तर-प्रान्तीय बनानेके लिये सभाके प्रयत्नोंसे उसकी लिपिमें सुधार हुए, उसकी एक संकेत-लिपि (शॉर्ट हैंड) का निर्माण हुआ तथा टाइप-राइटिंग सिखानेके लिये एक विद्यालय भी खोला गया। प्रचारके लिये 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका,' 'सरस्वती' तथा 'हिन्दी' के नामसे पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित की गयीं। (हिन्दी जगत्में युगान्तर उपस्थित करनेवाली मासिक 'सरस्वती'का जन्म पहले पहल नागरी प्रचारिणी सभाके ही तत्वावधानमें हुआ था)। हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी स्थापना की प्रेरणा भी ना० प्र० सभाने ही दी थी, बल्कि साहित्य सम्मेलनका प्रथम अधिवेशन भी (१९१०में) महामना मदनमोहन मालवीयकी अध्यक्षतामें सभामें ही हुआ था।

सभाकी ओरसे अब तक लगभग २५० छोटे-बड़े ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें कुछ तो, जैसे 'शब्द सागर' (विशाल आकारके ४,२६८ पृष्ठ), 'पृथ्वीराज रासो' (१२ भाग; पृष्ठ संख्या २,२५४) 'वैज्ञानिक कोष' और हिन्दीका बड़ा 'व्याकरण' बहुत ही मूल्यवान हैं। इनके अतिरिक्त बीसियों पुराने ऐतिहासिक और अलभ्य ग्रन्थोंका—हस्तलिखितका—वर्षोंके परिश्रमसे उसने प्रकाशन और उद्धार किया है। देशके विभिन्न प्रान्तों और रियासतोंमें प्राचीन ग्रंथोंके खोज-कार्यके द्वारा सभाके कार्यकर्ताओंने कई हजार ग्रन्थोंका नाम और पता लगाया है। सभाके पुस्तकालयमें सूचीवार उनके नाम और पते सुरक्षित हैं; साथ ही १,००० से ऊपर हस्त-लिखित ग्रन्थ भी रखे हैं। हिन्दीका वर्तमान विशाल भवन सभाके इसी ठोस कार्यकी नींव पर खड़ा हुआ है।

—

ाुरुओंकी एक चित्रमाला तैयार करायी जा रही है। कबीर, रैदास आदि सन्तोंके तथा भक्त
लदास, बल्लभाचार्य, तुलसीदास और शिवाजीके चित्र तैयार हो चुके हैं; तानसेन, मति
मद आदिके चित्र हाथमें हैं।

सभाका खोज-कार्य विहार एवं भावनगर तथा गोरखपुरके जिलोंमें हुआ। २१६ ग्रन्थों
ण प्राप्त हुआ, जिनमेंसे ५१ के रचयिताओंके नामोंका पता नहीं चल सका। ये ग्र
ी से लेकर २०वीं शताब्दी तक के हैं। अनुशीलन-विभागमें श्रीचन्द्रकृष्णजी अग्रवालको पत
है कि हिन्दीमें भारतीय परम्पराके प्रेम-ग्रन्थोंकी स्वकीय शाखा भी है जो सूफी प्रेम
ीसे पृथक है। चन्द्रकृष्णजीका कार्य चल रहा है। उन्होंने बहुमूल्य ऐतिहासिक तथ्य हमें
हैं, जिनसे हमारी भाषा और साहित्यके इतिहासकी सीमाओंका विस्तार और परिष्कार
जा सकेगा।

४

इस प्रकार यह राष्ट्रीय संस्थाका कार्य प्रचार और प्रकाशकी चकाचौंधसे दूर, चुपचाप
रहा है। हिन्दीको आज राष्ट्रीय और अन्तर-प्रान्तीय भाषा होनेका गौरव प्राप्त है। लेकिन
कितने लोग जानते हैं कि हिन्दीको यह गौरव दिलानेके लिये, उसे समुन्नत और समृद्ध
के लिये, सभाने कितना कार्य किया है? देशप्रेम और स्वतंत्रताकी भावनाका प्रचार करने
कार्य राष्ट्रीय कांग्रेसने किया है, वही कार्य हिन्दीको पुष्ट और लोकप्रिय बनानेमें नागरी
रिणी सभाने किया है।

राष्ट्रीय आन्दोलनके आरम्भिक दिनोंमें हिन्दी हमारी राष्ट्रीयताके प्रचारका मुख्य साधन थी।
की स्वाधीनता और कला-संस्कृति-प्रेमी आत्माको जगानेमें उसने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।
के कार्योंसे जिस प्रकार देशकी अनेक पिछड़ी हुई जातियों और वर्गोंमें जातीय प्रेमकी भावना
, उसी प्रकार हिन्दीके प्रचारने देशकी अन्य भाषाओंके विकासमें योग दिया है। इसका
श्रेय नागरी प्रचारिणी सभाको है। स्वतंत्र भारतमें इस संस्थाका महान स्थान होगा,
शके कोने-कोनेसे आकर विद्यार्थी वहाँ पर अपने साहित्य और संस्कृतिका अध्ययन करेंगे।

डॉक्टर श्यामसुन्दरदास

काशी नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दी साहित्य जब तक जीवित रहेंगे, श्यामसुन्दर
मृत्यु तब तक कदापि नहीं हो सकती। भारतेन्दुके अस्त हो जानेके बाद हिन्दी बड़ी
य अवस्थामें थी। विदेशी भाषाके प्रभावके कारण राष्ट्रभाषा देशकी गुलामीका प्रतीक
पूर्णतया दब गयी थी। सभा और उसके आत्मा-स्वरूप बाबू श्यामसुन्दरदासने हिन्दी
हुआ सम्मान उसे वापस दिलाकर देश और राष्ट्रभाषाका सिर ऊँचा किया है।
गवेषणापूर्ण आलोचना साहित्य और भाषाशास्त्र विषयक ग्रन्थोंके प्रणयनसे उन्होंने हिन्दी
के अध्ययनको सुगम भी बनाया और सम्मानित भी। उनके देहावसान पर शोक प्रकट
उनका अपमान करनेके बराबर होगा। बाबूसाहब आजीवन अपने उद्देश्यको लेकर
त्तियोंसे लड़ते रहे और सदा आगे ही बढ़े।

नया साहित्य' मण्डल ऐसे साहित्य सेनानीका अभिनन्दन करता है; और प्रतिज्ञा करता
हिन्दी साहित्यकी परम्पराको आगे बढ़ाता हुआ वह अपनी महान विभूतियोंको सदैव
रखेगा।

नवजीवन मिल्स लि.

कलोल (उत्तर गुजरात)

★

सर्वोत्तम

पोपलीन, लंकलाट, ड्रिल, कोंच
मार्का सूतकी धोतियाँ, फेन्सी साड़ियाँ,
जेकार्डकी साड़ियाँ, फेन्सी शर्टिंग,
मलमल, वॉयल, डोरिया

●

रेशमकी तरह कोमल और मज़बूत, अन्य मिलोंसे
सस्ता, फिर भी बढ़िया (अप-टू-डेट)

●

हमारा उद्देश्य हर तरहका उत्तम कपड़ा बनाना है
जिससे महँगाईके इन दिनोंमें हर वर्गकी
आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकें।

दिग्दर्शक : निर्माता आचार्यके झण्डेके नीचे फिर एकबार

लीला चिटनिस

दो-दो लोकप्रिय चित्रोंकी सृजक
कलाकार-दिग्दर्शक की जोड़ीका नया कला-सृजन

★

एन. आर. आचार्य

सगर्व भेंट करते हैं

शतरंज

—कलाकार—

लीला चिटनिस

कृष्णकान्त, सुनेत्रा, मित्र, मिश्रा,
पद्मा बनर्जी, मास्टर अमृतलाल,
नंदकिशोर, जमु पटेल, भीम

★

संगीतके प्रेरक सुरोंमें नवजीवन फूँकनेवाला

आचार्य आर्ट प्र

वह अभियुक्ता थी—वह हत्यारिन थी

परन्तु फिर भी उसने देश के लिये अपनी जान की बाजी लगा दी !

वर्तमान भारतकी एक नयी हिरोइनकी आश्चर्यजनक कहानी।

नवयुग चित्रपटका सृजन

पन्ना

—दिग्दर्शक—

सैयद नजमुल हसन नकवी

—मुख्य कलाकार—

गीता निज़ामी

जसराज

डेविड

कुसुम देशपांडे

●

नवयुग चित्रपट की आगामी भेंट

दिन रात

[illegible]

[illegible]

महाकवि कालिदासने
अपनी कल्पना-प्रतिभासे
जिस स्वप्न नगरीका
निर्माण किया था

★

उसको भारतविख्यात
दिग्दर्शक
देवकी बोस
रुपहरी परदेपर
समूर्त कर
रहे हैं।

★

कीर्ति पिक्चर्स का रमणीय रससर्जन

मेघदूत

: दिग्दर्शक :
देवकी बोस

: संगीत नियोजन :
कमल दास गुप्ता

लीला देसाई
शाहू मोडक
आगा जान
कुसुम देशपान्डे
हरी शिवदासानी
और
वास्ती

: निर्माता :
पी. बी. झवेरी

: कला नियोजन :
चारु राय

विवरणके लिये लिखिये :
श्री फिल्म्स, ८५ दादर मेन रोड, बम्बई, १४